॥ अथ कठोपनिषत्प्रस्तावः

इयं कठोपनिषद्यजुर्वेदीय कठशाखान्तर्गता, कठइति ऋषिविशेषस्य नामधेयम्। तेनप्रोक्तमित्यर्थे समुत्पन्नस्य तद्धितप्रत्ययस्य कठचरकाल्लुगिति लुक्। कठेन प्रोक्ता कठा शाखा तदन्तर्गतोपनिषदपि कठा। अधुना पूर्ण कठशाखा त्वप्रचरिता तस्या उपनिषद्भागमात्रमुपलभ्यते। सर्वासामुपनिषदां प्रयोजनं दुःखबहुलः संसारो हेयोऽभयं निर्मलं निर्विकारं शुद्धं शान्तमानन्दमयं ब्रह्म मुमुक्षुभिः प्राप्यमिति सर्वतन्त्र सिद्धान्तः। तदेवात्रापि विज्ञेयम्। तत्राख्यायिकया ब्रह्मविद्योपदेशो जिज्ञासुदार्ढ्याय विद्यास्तुतये च। एतां ब्रह्मविद्यामुपास्यैव सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽपि, परं धाम जग्मुः। ब्रह्मजिज्ञासुरेवाधिकारी, विषयः प्रत्यगात्मभूतं परं ब्रह्मैव, आत्यन्तिकी संसारदुःखनिवृत्तिरेव प्रयोजनम् एतदुक्तप्रयोजनेन साध्यसाधनभावो ग्रन्थस्य सम्बन्ध इत्यनुबन्धचतुष्टयम्। सिद्धार्थं सिद्धसंबन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते। शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः संबन्धः सप्रयोजनः ॥ १ ॥

अस्यामुपनिषदि शिष्याचार्यसंवादः प्रारभ्यतेप्रवृत्तः। पुरा वाजेनान्नदानेन श्रवः कीर्तिस्स्य स वाजश्रवा नाम कश्चिदृषिरासीत् तस्यापत्यं पुत्रो वाजश्रवसस्तस्य वाजश्रवसस्य नचिकेताः पुत्र आसीत् स च पूर्वजन्मानुभूतसंस्कारवानात्मज्ञानोत्सुक आसीत् कथं चित्क्रुद्धेन तस्य नचिकेतसः पित्रा स मृत्यवे दत्तो यमनाम्नो देवस्य ब्रह्मनिष्ठस्याचार्यस्य समीपं गतवान् यमेन चास्मै सुपात्राय ब्रह्मविद्योपदिष्टा। विशेषस्तत्रतत्र वक्ष्यते ॥

भावार्थ—यह कठोपनिषद् यजुर्वेदकी कठशाखाके अन्तर्गत मानी जाती है कठ नाम ऋषि विशेषका है कठ ऋषिकी कही उपनिषद् भी कठ कहाती है। आज कल कठशाखा संपूर्ण नहीं मिलती किन्तु उपनिषद् भाग मात्र प्रचरित है। सब उपनिषदोंका मुख्य प्रयोजन यही है कि मुमुक्षु जन दुःखरूप संसारसे वैराग्यको प्राप्त होकर निर्भय निर्मल निर्विकार शुद्ध शान्त और आनन्द स्वरूप ब्रह्मको प्राप्त हों। यहां इतिहासके संग ब्रह्मविद्याका उपदेश इस लिये है कि ज्ञानकी इच्छा रखने वालोंको दृढ़ज्ञान हो और ब्रह्मविद्याकी उत्तमता विदित हो जिससे ठीक २ रुचि हो क्योंकि पूर्वज नचिकेता आदि संस्कारी महात्माओं ने भी जिस ब्रह्मज्ञानके लिये संसार के बड़े २ राज्यादि सुखोंको भी तृणमात्र तुच्छ समझके त्याग दिया और ब्रह्मज्ञानको सर्वोपरि समझके उसी के लिये प्रयत्न किया, वाजश्रवस जो नचिकेता के पिता थे उन्होंने संसारको तुच्छ मानकर ही सर्ववेदस यज्ञ किया जिसमें सर्वस्व दक्षिणामें देकर संन्यासी हुए इससे ब्रह्मविद्या

की प्रशंसा निकलती और जिज्ञासु के हृदयमें ज्ञानकी पुष्टि होती है इसी ब्रह्मविद्याका सेवन करके ब्रह्मर्षि लोग जो हमारे पूर्वज वृद्ध हुए वे परमधाम को प्राप्त होते आये हैं॥

ब्रह्मका जिज्ञासु ही अधिकारी है, सबके घट २ में अन्तर्यामी ब्रह्मही इस ग्रन्थका विषय है, संसारके अपार दुःख की अत्यन्त निवृत्ति होना ही प्रयोजन है इस प्रयोजन और ग्रन्थका साध्यसाधनभाव संबन्ध है अर्थात् प्रयोजन साध्य और ग्रन्थ साधन है। अधिकारी विषय प्रयोजन और संबन्ध ये ही चारों अनुबन्ध चतुष्टय कहाते हैं। जिसका प्रयोजन तथा संबन्ध ठीक सिद्ध होता है उसी विषयको श्रोता वा अध्येता पढ़ना सुनना चाहते हैं। इस लिये प्रत्येक शास्त्र के आदिमें प्रयोजन संहित ग्रन्थका सम्बन्ध कहना चाहिये॥

इस उपनिषद् में आचार्य और शिष्यका संवाद प्रारम्भ से रक्खा है। पहिले समयमें वाज नाम अन्न अधिक दान करने से जिनकी विशेष कीर्त्ति हुई इससे उनका वाजश्रवा नाम हुआ उन वाजश्रवा ऋषिके पुत्र वाजश्रवस थे उनका पुत्र नचिकेता हुआ। वह नचिकेता पूर्वजन्मके शुद्ध संस्कार और वासनाओंके अनुसार आत्मज्ञानकी विशेष उत्कण्ठा बाल्यावस्थासे ही रखता था उसके पिता वाजश्रवस वक्ष्यमाण प्रकारसे क्रुद्ध हो गये और पुत्रको मृत्युके लिये दे दिया नचिकेता उन ब्रह्मज्ञानी यमराज मृत्यु आचार्यके पास पहुंच गया और यमराजदेव ने इस सुपात्र नचिकेताके लिये ब्रह्मविद्या का उपदेश किया यही विषय इस उपनिषद् में है इसकी विशेष व्याख्या क्रमसे की जाती है॥

इति कठोपनिषत्प्रस्तावः समाप्तः॥

श्री महागणाधिपतये नमः

ओं–नमो भगवते वैवस्वता
ह्मविद्याचार्याय नचिकेतसे च ॥

Nachiketas & his father

॥ अथ कठोपनिषदभाष्यारम्भः ॥

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नाचिकेता नाम पुत्र आस ॥ १ ॥

अन्वयः–(ह, वै) भूतपूर्वस्य वृत्तस्य स्मरणार्थौ निपातौ। अयमितिहासो जिज्ञासुभिः स्मर्त्तव्यइत्यर्थः । (उशन्) मुक्तिफलं कामयमानः (वाजश्रवसः) वाजश्रवसोऽपत्यं वाजश्रवसः (सर्ववेदसम्), सर्वं च तद्वेदो धनमस्मिन्निति समासः। एवंभूतं वस्तुसमूहम् धनम् (ददौ) दत्तवान् । सर्वमेधनामकयज्ञं कृतवान् तस्मिन् सर्वं स्वस्य धनं दक्षिणायां दातव्यमितिविधीयते तथैव कृतवान् । (तस्य) यज मानस्य वाजश्रवसस्य (ह) प्रसिद्धः (नचिकेताः) इति (नाम) नामकः (पुत्रः) आत्मजः (आस) बभूव ॥ १ ॥

भावार्थः–(ह, वै) ये दोनों अव्यय पहिले बीते हुए वृत्तान्तका स्मरण कराने के लिये हैं, अर्थात् यह जताया है कि ज्ञानी लोगोंको इस इतिहासका स्मरण करना वा रखना चाहिये (उशन्) संसारकी सब व्याधि वा उपद्रवोंसे छूटने की इच्छा रखता हुआ (वाजश्रवसः) वाजश्रवसनामक ऋषि

(सर्ववेदसम्) अपने सब धनादि पदार्थको (ददौ) देता हुआ, अर्थात् सर्वमेध विश्वजित् नामक यज्ञ किया जिस समय मनुष्य संन्यास धारण करे उस समय सर्वमेध नामक यज्ञ करे उस यज्ञमें सब पदार्थोंको ऋत्विगादि सुपात्रोंके अर्थ देदेना चाहिये, यदि पुत्रादि हों तो यथायोग्य उनको भी देदिया जाय किन्तु शरीरसे भिन्न संन्यास लेने वालेका संबंध किसी पदार्थसे न रहे कि मेरा अमुक पदार्थ यह है वा वहां है. और न अन्य कोई कहे कि यह पदार्थ अमुक संन्यासीका है इसी प्रकार नचिकेताके पिताने सर्ववेदसयज्ञ किया (तस्य) उस यज्ञकर्ता ऋषिका (ह) प्रसिद्ध तेजस्वी (नचिकेताः) इस (नाम) नामवाला (पुत्रः) पुत्र (आस) था ॥ १ ॥

तꣳह कुमारꣳ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत ॥ २ ॥

अन्वयः-(कुमारम्) अप्राप्तयौवनं प्रथमवयसं बालम् (सन्तम्) (तम्) नचिकेतसम् (नीयमानासु) ऋत्विग्भ्यो विद्वद्भ्यो सदस्येभ्यः सुपात्रेभ्यो यथाभागम् (दक्षिणासु) दक्षिणार्थासु गोषु विभज्यमानासु (श्रद्धा) आस्तिक्यी मतिः पितुर्हितार्थप्रयोजिका (आविवेश) किमिदं कर्म मम पित्रा क्रियतइति विचारवती बुद्धिरासीत् (सः) नचिकेताः (अमन्यत) विचारितवान् किं तदाहाग्रे ॥ २ ॥

भा०-(कुमारम्) युवावस्थाको न प्राप्त हुए अर्थात् १५ वर्ष के भीतर अवस्था वाले (सन्तम्) वर्तमान कुमार बालक उस नचिकेता को (नीयमानासु) विद्वान् सदस्यशालामें विद्यमान सुपात्रों तथा ऋत्विज् ब्राह्मणोंके लिये यथा योग्य (दक्षिणासु)

दक्षिणार्थं गौओंका विभाग करते समय (श्रद्धा) आस्तिकता रूप पिता का हित करने वाली (आविवेश) मेरा पिता यह क्या कर्म करता है ऐसी विचार युक्त धर्मानुकूल बुद्धि होती हुई (सः) वह नचिकेता जो (अमन्यत) मानता हुआ सो आगे कहते हैं अर्थात् पिता अन्य पदार्थोंका दान कर्त्ता २ जब गौओं का दान करने लगा तब पुत्रके चित्तमें विचार हुआ ॥ २ ॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः । अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत् ॥ ३ ॥

अन्वयः=सदसि पित्रुद्देशेनाह नचिकेताः (पीतोदकाः)पूर्वस्मिन् मध्यमे वयसि पीतमुदकं याभिस्ताः पीतोदकाः,नेदानीं पातुं समर्था इत्यर्थः (जग्धतृणाः) जग्धानि भक्षितानि तृणानि याभिस्ता जग्धतृणाः, नेदानीं चर्वणसमर्था इत्यर्थः । (दुग्धदोहाः) दुग्धो दोहः क्षीरं यासां ताः (निरिन्द्रियाः) प्रजननासमर्थाः, जीर्णा अतिवृद्धाः । ताः एवमुक्तप्रकारका गा यो यजमानः (ददत्)अददत्=अडभावआर्षः । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा बुद्ध्या ददाति (सः)ये (ते) (अनन्दाः) आनन्दरहिता असमृद्धाः सुखभोगसाधनहीना लोकाः, स्थानविशेषाः (नाम) प्रसिद्धाः सन्ति तान् दुःखसाधनयुक्तान् (गच्छति) प्राप्नोति । अर्थादेवं भूतानां

गत्वा दक्षिणार्थेन दानेन दाता सुखं न लभतेऽतएव मम पित्रापि न सुष्ठु कृतमिति ध्वनितोर्थः ॥३॥

भा०—सभामें जहां कि यज्ञके कर्त्ता वा देखने वाले आदि उपस्थित थे वहां नचिकेता पिताकी ओर संकेत करके बोला कि (पीतोदकाः) पहिली दूसरी अवस्था में जिन्होंने जल पिया अब अतिवृद्ध होने से नहीं पी सकतीं (जग्धतृणाः) पहिले घास आदि खाचुकीं अब दांतों वा डाढ़ों के न रहने से चारा भी नहीं खा सकतीं (दुग्धदोहाः) जब दूध देने योग्य थीं तब दूध दुहा गया अब दूध नहीं दे सकतीं (निरिन्द्रियाः) अब बच्चा देनेकी योग्यता वा शक्ति भी इन्द्रिय [उपस्थ] में नहीं (ताः) इस उक्त प्रकारकी गौयें जो यजमान ऋत्विज् आदि सुपात्रोंको दक्षिणा बुद्धिसे (ददत्) देता है (सः) वह (ते) जो वे (अनन्दाः) सुख भोगकी सामग्री से रहित (लोकाः) स्थान विशेष (नाम) प्रसिद्ध हैं (तान् उन दुःख साधन युक्त लोकोंको (गच्छति) प्राप्त होता है । अर्थात् ऐसी गौओंको दक्षिणार्थ देने से दाता सुख को नहीं प्राप्त होता इसी से मेरे पिताने भी अच्छा न किया जो ऐसी गौयें दक्षिणामें दीं । दान दक्षिणामें दुग्धसे हरी भरी ज्वान गौयें देना ही पुण्यकारक है यह अभिप्राय है ॥ ३ ॥

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति । द्वितीयं तृतीयं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ॥ ४ ॥

अ०=नचिकेतसा च प्रादुर्भूतजन्मान्तरीयसंस्कारेण विदुषा सतैवमालोचितं यज्ञफलनाशकमिदं दक्षिणादानं पितुरनिष्टजनकं पुन्नाम्नो

नरकाद् दुःखविशेषात् त्रातुं जायमानेन मया पुत्रेण सता पितुरिदमनिष्टमात्मप्रदानेनापि वारणीयमिति मत्वा पितुः सान्निध्यं गत्वेत्थमवदत्। (सः,ह) स एव नचिकेताः पुनः(पितरम्)वाजश्रवसमभिमुखीकृत्य (उवाच) हे (तत) तात पितः [छान्दसं ह्रस्वत्वम्] माम्) (कस्मै) ऋत्विग् विशेषाय दक्षिणार्थे(दास्यसीति) इत्येवमुवाच । एवमुक्तेऽपि पिता बालबुद्धिरयमज्ञइति मत्वा किञ्चिदपि नाह । अतएव नचिकेताः द्वितीयम्) द्विवारम् (तृतीयम्) त्रिवारम् (ह) (उवाच) कस्मै मां दास्यसि कस्मै मां दास्यसीति ततः पिताऽपि नाऽयं बालइति मत्वा क्रुद्धः सन्(इति)उवाच (त्वा)त्वाम्(मृत्यवे) यमराजदेवाय (ददामि) वर्त्तमानसामीप्ये भविष्यति लट् दास्यामीत्यर्थः ॥

भा०=प्रकट हुये हैं जन्मान्तरीय संस्कार जिसके ऐसे विद्वान् नचिकेता बालकने शोचा कि यह शास्त्रविरुद्ध गौओं का दक्षिणादान यज्ञफलका नाशक पिताका अनिष्टकारक है और पुत् नाम दुःख विशेष नरकसे पिताकी रक्षा करे वही ठीक पुत्र होता है मैं पिताकी रक्षाकें लिये ही उत्पन्न हुआ हूं मुझको अपना शरीर देकर भी पिताको इस अनिष्टसे बचाना चाहिये ऐसा विचार कर पिताके समीप जाकर इस प्रकार बोला कि—(सः, ह) वही नचिकेता फिर (पितरम्) अपने पिता वाजश्रवा ऋषिसे (उवाच) बोला कि हे (तत) तात पिता ! (माम्) मुझे (कस्मै) किस ऋत्विज् विशेषको

दक्षिणार्थ (दास्यसि) दोगे। इस प्रकार कहनेपर भी पिता ने जाना कि यह अज्ञानी बालक है यों ही बकता है इस कारण कुछ उत्तर न दिया तब नचिकेता (द्वितीयम्) दो-बार (तृतीयम्) तीनबार (ह, उवाच) बोला कि मुझे किसको दोगे? इत्यादि तब पिता भी यह समझके कि यह बालक नहीं क्रोधपूर्वक बोला (मृत्यवे) मृत्युके लिये (त्वा) तुझे (ददामि) दूंगा ॥ ४ ॥

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ।
किंस्विद्यमस्य कर्त्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ॥५॥

अ०=पितुर्वचो निशम्य नचिकेता एकान्ते परिदेवयाञ्चकार अहं (बहूनाम्) शिष्याणां मध्ये (प्रथमः) मुख्यउत्तमकक्षाम् (एमि) प्राप्नोमि (बहूनाम्) बालानां मध्ये (मध्यमः) मध्यमीयां कक्षाम् (एमि) प्राप्नोमि। न केषांचिदपेक्षयाऽधमोऽस्मीति तदेवमुत्कृष्टगुणमपि पुत्रं कथं जनक उक्तवान् मृत्यवे त्वा ददामीति, रहसि क्लेशाविष्टश्चिन्तयामास (यमस्य) मृत्योः (किंस्वित्) (कर्त्तव्यम्) कार्य्यमस्ति (यत्) (मया) साधनभूतेन (करिष्यति) साधयिष्यति मम पितेति शेषः (अद्य) मम पित्रा प्रयोजनमनालोच्यैव क्रोधाविष्टेनोक्तम्। तथापि तत्पितुर्वचो व्यर्थं माभूदिति मत्वा पितुः सदेशमागत्य शोकाविष्टं पितरमुवाच। पिता चानालो-

च्य क्रोधेन सहसैवोक्तवान् मृत्यवे त्वा ददामीति तेन पुत्रवियोगदुःखेन शोकाविष्टः संपन्नः ॥५॥

भा०=पिताका वचन सुनकर नचिकेता कहता हुआ कि मैं (बहूनाम्) बहुत शिष्योंमें (प्रथमः) मुख्य उत्तम कक्षा को (एमि) प्राप्त हूं (बहूनाम्) बहुत बालकोंमें (मध्यमः) मध्यम कक्षाको (एमि) प्राप्त हूं किन्तु किन्हींकी अपेक्षा मैं निकृष्ट नहीं हूं फिर ऐसे उत्तम गुण युक्त पुत्रसे पिताने ऐसा क्यों कहा कि तुझे मृत्युको दूंगा इस प्रकार एकान्तमें क्लेश पूर्वक चिन्ता करने लगा (यमस्य) जिसको मृत्यु भी कहते हैं उस यमराजका (किंस्वित्) क्या (कर्त्तव्यम्) करने योग्य काम मेरे विना पड़ा है (यत्) जो (मया) मुझसे पिता (करिष्यति) करावेगा (अद्य) आज मेरे पिताने कुछ प्रयोजन न विचारके शीघ्रतामें क्रोधपूर्वक कहदिया। तो भी पिता का वचन व्यर्थ मिथ्या न हो ऐसा मानकर पिता के समीप आके शोक युक्त पितासे बोला। पिताने विना शोचे विचारे क्रोधमें सहसा कह दिया था कि मृत्युके लिये तुझे दूंगा, जब शोचा कि यह मैंने क्या कह डाला तब पुत्रके वियोगसे होने वाले दुःखका स्मरण करके शोक करने लगा ॥ ५ ॥

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे ।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥ ६ ॥

अ०=उक्तप्रकारेण शोकाविष्टं जनकमालोक्य नचिकेता आह नहि भवादृशो धर्मज्ञः शोकं कर्त्तुमर्हति (पूर्वे) पूर्वं जाताः पितृपितामहादयो वृद्धा धर्मज्ञाः (यथा) येन प्रकारेणाचरणं

कृतवन्तस्तथा त्वम् (अनुपश्य) तेषामनुकूलमाचरणं विचारय (तथा) तथैव (अपरे) वर्त्तमाना धर्मात्मानः सज्जनाः (प्रतिपश्य) प्रतिज्ञापालनं यथा कुर्वन्ति तथैव त्वमपि कुरु नैव तेषु सत्यवादिषु स्वमुखान्निस्सृतस्य वचसो मृषाकरणमासीदस्ति वा ततो विरुद्धकरणमसतामधर्मात्मनां कृत्यम् । नहि प्रतिज्ञां विहाय कश्चिदमरो भवति कुतः (मर्त्यः) मरणधर्मा प्राणी (सस्यमिव) क्षेत्रोत्पन्नो यवादिरिव (पच्यते) जीर्णो भवति वृद्धत्वमापन्नः प्राणान् जहाति (पुनः) मृत्वा (सस्यमिव) (आजायते) प्रादुर्भवति । अनित्यानि शरीराणि मुहुर्मुहुरुत्पद्यन्ते विनश्यन्ति च तदर्थमपि प्रतिज्ञापालनरूपो नित्यो धर्मः सत्याचरणलक्षणो मनुष्येण न हातव्योऽतो मां प्रेषय मृत्यवे इति तात्पर्य्यम् ॥ ६ ॥

भा०—उक्त प्रकारसे पिताको शोकातुर देखकर नचिकेता बोला कि आप जैसे धर्मज्ञ लोग शोक नहीं करते हैं (पूर्वे) पहिले हुए आपके पिता पितामहादि बाप दादे धर्मात्मा वृद्ध [बुजुर्ग] लोग (यथा) जिस प्रकारसे आचरण करते आये हैं (तथा) वैसा आप भी (अनुपश्य) उसके अनुसार विचार करो वैसे ही (अपरे) वर्त्तमान धर्मात्मा सज्जन लोग (प्रतिपश्य) प्रतिज्ञा का पालन जैसे करते हैं वैसे आप भी करो सत्यवादी लोगोंमें मुखसे निकले वचनको कोई मिथ्या नहीं करता था वा न करता है । प्रतिज्ञासे विरुद्ध

consume the whole house, so a Brahman nation destroys all (the) happiness of a house if he is not received when he comes

कर वा प्रतिज्ञाको छोड़कर कोई अमर नहीं होता क्योंकि (मर्त्यः) मनुष्य (सस्यमिव) खेत में उत्पन्न हुए जौ आदिके समान (पच्यते) जीर्ण होता अर्थात् वृद्धावस्थाको प्राप्त होकर मरता है (पुनः) मरकर (सस्यमिव) खेतीके समान (आ-जायते) उत्पन्न होता अर्थात् अनित्य शरीर बार २ उत्पन्न और नष्ट होते हैं उस शरीरके लिये भी प्रतिज्ञा पालन सत्या-चरण युक्त नित्य धर्मका मनुष्यको त्याग न करना चाहिये इस से मुझे मृत्युके पास भेजो अपनी प्रतिज्ञा सत्य करो यह अ-भिप्राय है ॥ ६ ॥

Vachiketas in the House enters guest Brahma

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् ।
तस्यैताᳪं शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोद-कम् ॥ ७ ॥

अ०=एवं नचिकेतसोक्तः पिता सद्वृत्तमनु सृत्य नचिकेतसं मृत्युसन्निधौ प्रेषयामास तस्य यमस्य सद्म प्राप्य नचिकेतास्तिस्रो रात्रीरवा-त्सीत्, तदानीमेव यमश्च कार्यार्थं प्रदेशान्तरं गत-वान् यमस्य भार्य्यादिभिः सत्कारायोक्तोपि न-चिकेता न किमपि भोजनादिसत्कारं लब्धवान् पित्राहं मृत्यवे प्रेषितः सचेदानीं स्वगृहे नास्ति यदा तं प्राप्स्यामि तदा यत्स वक्ष्यति तत्करि-ष्यामीत्येवं पितुर्वचः सत्यं भविष्यति । इत्यालो-च्य नचिकेता निराहार एव त्रीणि दिनानि यम सद्मन्युवास । ततस्तृतीयदिवसे आगते यमे भार्यादय ऊचुः=हे (वैवस्वत) विवस्वतः पुत्र !

तव (गृहान्) (वैश्वानरः) अग्निरिव तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्वी (अतिथिः) सत्काराऽर्हः (ब्राह्मणः) ब्रह्मवंशजः (प्रविशति) प्रविष्टोऽस्ति (तस्य) एवंभूतस्यातिथेः (एताम्) सत्काररूपाम् (शान्तिम्) प्रसन्नताम् (कुर्वन्ति) धर्मज्ञाः सज्जना इति शेषः । अतस्त्वम् (उदकम्) उपलक्षणमेतदन्यपूजासामग्र्याः (हर) प्रापय । तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता । एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ इति मनुवचनादपि सिद्धाऽतिथिपूजा ॥७ ॥

भा०—इस पूर्वोक्त प्रकार नचिकेताके कहने पर श्रेष्ठ लोगोंके वर्त्तावके अनुसार पिता अपने पुत्रको मृत्युके समीप भेजता हुआ, यमराजके घरमें नचिकेता जाकर तीन दिनपड़ा रहा, यमराज कहीं प्रदेशान्तरको चलेगये थे यमराजके स्त्री आदिके कहनेपर भी नचिकेताने भोजनादि कुछ नहीं किया न जल पिया किन्तु यह विचार किया कि मुझको पिताने मृत्युके पास भेजा है वे इस समय घरपर नहीं हैं जब उनसे मेल होगा तब जो कुछ वे कहेंगे सो करूंगा इस प्रकार करने से ही पिताका वचन सत्य होगा ऐसा विचार करके नचिकेता तीन दिन उपवास कर यमराजके घरमें रहा । इसके पश्चात् जब यमराज आये तब उनकी स्त्री आदि बोलीं कि हे (वैवस्वत!) विवस्वान्के पुत्र ! आपके (गृहान्) घरोंमें (वैश्वानरः) अग्निके समान कान्तियुक्त ब्रह्म तेजधारी (अतिथिः) सत्कार करने योग्य अभ्यागत (ब्राह्मणः) विद्या तपसे युक्त ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न ब्रह्मचारी (प्रविशति) आया हुआ है (तस्य) इस उक्त प्रकारके अभ्यागतकी (एताम्) सत्कार

पूर्वक धर्मात्मा सज्जनलोग (शान्तिम्) शान्ति (कुर्वन्ति) करते हैं । इस लिये आप (उदकम्) जलआदि सत्कार की सामग्री को (हर) प्राप्त कीजिये अर्थात् जल आदि से नचिकेता की पूजा कीजिये । धर्मनाशक मनुस्मृति में भी कहा है कि आसन, स्थान, जल, और प्रियवाणी बोलना यह सत्कार की सामग्री अभ्यागत के लिये सदा सज्जनों के घर में उपस्थित रहती है ॥ इस वचन से भी अतिथि की पूजा सिद्ध होती है ॥ ७ ॥

आशाप्रतीक्षे सङ्गतꣳ सूनृताञ्चेष्टापूर्त्ते पुत्रपशूꣳश्च सर्वान् । एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ ८ ॥

अ०—भार्यादयो यमराजमन्यदप्यूचुः (आशाप्रतीक्षे) इष्टस्य विषयस्योत्कण्ठापूर्वकं या प्रार्थना साऽऽशा, अविज्ञातस्य वस्तुनः प्राप्त्यर्थं प्रतीक्षणं प्रतीक्षा ते (सङ्गतम्) सत्सङ्गतिजं फलम् (सूनृताम्) सकरुणां वाचम् (च) तस्या वाचो निमित्तम् (इष्टापूर्त्ते) इष्टं यज्ञादिश्रौतकर्मजन्यं फलं, पूर्त्तं वापीकूपतडागदेवतायतनारामानाथपालनधर्मप्रचारादिस्मार्त्तकर्मजन्यं फलम् (सर्वान्) (पुत्रपशूꣳश्च) पुत्रांश्च पशूंश्च (अल्पमेधसः) अल्पमतेः (यस्य) (पुरुषस्य) (ब्राह्मणः) ब्रह्मधर्मस्थोऽतिथिः (अनश्नन्)

अभुञ्जानः (गृहे) (वसति) तस्य पुरुषस्य (एतत्) पूर्वोक्तं सर्वमाशादिजन्यंफलम् (वृङ्क्ते) वर्जयति नाशयति त्यक्तं नष्टं वा भवति । अतोऽतिथिसत्कारोऽवश्यं करणीयो नतु कदापि सोऽतिथिरुपेक्षणीय इति ॥ ८ ॥

भावार्थः—स्त्री आदि यमराज से और भी बोले कि (यस्य) जिस (पुरुषस्य) पुरुष के (गृहे) घरमें (अनश्नन्) भोजनादि सत्कार को न प्राप्त हुआ (ब्राह्मणः) ब्रह्मधर्म में स्थित अभ्यागत (वसति) वास करता है उस (अल्पमेधसः) निर्बुद्धि गृहस्थ के (आशाप्रतीक्षे) अभीष्ट विषय की प्रार्थना पूर्वक प्राप्तिकी उत्कण्ठा रूप आशा और अज्ञात वस्तुकी प्राप्ति की प्रतीक्षा (सङ्गतम्) सत्संगति से होने वाला फल (सूनृताम्) दया पूर्वक वाणी (च) और उस वाणी का निमित्त श्रद्धादि (इष्टापूर्ते) अग्निहोत्रादि श्रौत कर्मका फल और वापी कूप तड़ाग–ताल देवमन्दिर निर्माण, देवप्रतिमा स्थापन बाग बगीचा अनाथों का पालन और धर्म का प्रचार आदि धर्मशास्त्र संबन्धी कर्म का फल (पुत्रपशूंश्च) पुत्र और पशुओं को (सर्वान्) (एतत) इस पूर्वोक्त आशादि के सब फलको सत्कार न किया हुआ अतिथि (वृङ्क्ते) नष्ट करता है अर्थात् अतिथि गृहस्थ के घर से सत्कार न पावे तो उस गृहस्थको पाप लगजाता है इस लिये अतिथि का सत्कार अवश्य करना चाहिये किन्तु उस अतिथि की उपेक्षा कभी न करे ॥ ८ ॥

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः । नमस्तेऽस्तुब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व॥९॥

अ० यमराजो भार्य्यादीनां वचः श्रुत्वा नचिकेतसमभिमुखीकृत्योवाच हे (ब्रह्मन्) ब्रह्मधर्मस्थ त्वम् (अतिथिः) अनियतागमनतिथिः सत्काराहोऽतएव (नमस्यः) नमस्कर्त्तुं योग्यः (ते) तुभ्यम् (नमः) (अस्तु) (मे) मम तव कृपातः (स्वस्ति) कल्याणम् (अस्तु) प्रसीद ममापराधं क्षमस्वेति भावः। प्रार्थनानन्तरमधिकप्रसादनायान्यदाह । हे (ब्रह्मन्) (यत्) यतस्त्वम् (मे) मम (गृहे) (तिस्रः) (रात्रीः) (अनश्नन्) अभुञ्जानः (अवात्सीः) (तस्मात्) कारणात् (प्रति) प्रतिदिवसमेकैकम् (त्रीन्)(वरान्) मनोऽभिलषितान् कामान् (वृणीष्व) याचस्व ॥९॥

भावार्थः—यमराज स्त्रीआदिके कथन को सुनकर नचिकेताके पास जाकर बोले कि हे (ब्रह्मन्) ब्रह्मधर्ममें स्थित नचिकेतः तुम (अतिथिः) जिसके आगमनकी कोई तिथि नियत नहीं ऐसे सत्कारके योग्य अभ्यागत हो इसीसे (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य हो (ते) तुम्हारे लिये मेरा (नमः) नमस्कार (अस्तु) प्राप्त हो तुह्मारी कृपासे (मे) मेरा (स्वस्ति) कल्याण हो अर्थात् प्रसन्न हो कर मेरा अपराध क्षमा करो । प्रार्थना करने पश्चात् अधिक प्रसन्न करनेके लिये और बोले कि हे (ब्रह्मन्) शुद्ध ब्राह्मण कुलोत्पन्न पुरुष (यत्) जिस कारण (मे) मेरे (गृहे) घरमें (तिस्रः) (रात्रीः) तीन रात (अनश्नन्) बिना भोजनादि किये (अवात्सीः) तुम रहे हो (तस्मात्) इस लिये (प्रति) प्रत्येक रात्रिके (त्रीन्)

The (Second) Boon

तीन (वरान्) अभीष्ट) विषयोंकी कामनाओंको (वृणीष्व) मांगिये जिससे मैं उरिण होजाऊं ॥ ९ ॥

Free from anxiety, cheerful, without anger

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो । त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीतएतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥१०॥

अ०=यमेनैवमुक्ते नचिकेता आह हे (मृत्यो) सर्वस्य मारक ! (गौतमः) गौतमवंशस्थो मम पिता (शान्तसंकल्पः) शान्तः संकल्पो यमं प्राप्य किन्नु मम सुतः करिष्यतीति संशयरूपो मानसव्यापारो यस्य सः (सुमनाः) प्रसन्नचित्तः (वीतमन्युः) वीतो विगतो मन्युः शोकःक्रोधोवाऽस्य सः (मा, अभि) मां प्रति (स्यात्) भवेत्। अर्थाद्भवताऽन्तर्यामिणा वरदानेन पितुर्मनस्येवं संकल्पः कार्यो येन मम पिता मध्ये जातां क्रोधवृत्तिं विहाय भूतपूर्वया प्रेमवृत्त्या मया सह वर्त्तेत (त्वत्प्रसृष्टम्) त्वया प्रेषितम् (मा) माम् (अभि) अभिलक्ष्य (प्रतीतः) सएवायं नचिकेता इति प्रत्यभिजानन् (वदेत्) कुशलादिकं पृच्छेदपि नतु मौनः स्यात् (एतत्) (त्रयाणाम्) मध्ये (प्रथमम्) मुख्यम् (वरम्) अभीष्टम् (वृणे) याचे, एकस्मिन्याचिते वरे वुद्धिमान्द्यात्कश्चित्ततसा कतिपया वरा याचिताः पुनरहं पितुः सदेशं गच्छेयं, पिता प्रसीदेत्प्रती-

याश्च, अयं च संदेहो न स्याद्यद्यमलोकं गतास्तेनैव देहेन न पुनरावर्त्तन्ते। जन्मान्तरीयतपोबलेन नचिकेताः सदेहो यमलोकं गत्वा पुनस्तथैवागतो यमवरदानेन ॥ १० ॥

भावार्थः—यमराजके ऐसा कहने पर नचिकेता यमराजसे बोला कि हे (मृत्यो) सबको मारने वाले यमराज। (गौतमः) गौतम वंशी मेरा पिता (शान्तसंकल्पः) यमको प्राप्त होकर मेरा पुत्र क्या करेगा ? ऐसा संदेह रूप मानसिक विचार जिसका शुद्ध शान्त होजावे (सुमनाः) ऊपरी आकृतिसे भी प्रसन्न चित्त (वीतमन्युः) जिसका शोक वा क्रोध जाता रहा हो ऐसा (मा, अभि) मेरे प्रति (स्यात्) होजावे अर्थात् आप अन्तर्यामी होनेसे वरदान द्वारा मेरे पिता के मनमें ऐसा संकल्प कीजिये कि जिससे मेरा पिता बीचके हुए क्रोधादिकोंको छोड़के पहिले समयके तुल्य प्रेमसे मेरे साथ वर्त्ते (त्वत्प्रसृष्टम्) आपके भेजे हुए (माम्) मुझको (अभि) देखकर (प्रतीतः) यह वही मेरा पुत्र नचिकेता है ऐसा जानते हुए (वदेत्) कुशल क्षेमादि पूछे किन्तु मुझे देखकर मौन न होजावे (एतत्) यह (त्रयाणाम्) तीनमें से (प्रथमम्)मुख्य (वरम्) अभीष्टवर (वृणे) मांगता हूं। इस एक वरमें नचिकेता ने कई बातें मांगलीं यह बुद्धिकी तीव्रता है। मैं अपने पिताके पास फिर पहुंच जाऊं, पिता मुझपर प्रसन्न हो, मुझे पहचानले अर्थात् पिताके मनमें यह संदेह न रहे कि यमलोकमें गये फिर उसी शरीरसे लौटकर नहीं आसक्ते। जन्मान्तरीय तथा ऐहिक तपोबलके प्रभावसे नचिकेता को यह शक्ति हुई कि वह शरीर सहित यमलोकमें जाकर यम के वरदान से फिर उसी देह से पिता के पास आसका इत्यादि ॥ १० ॥

यथा पुरस्ताद भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः। सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान् मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्॥११॥

अ०—आद्यवरयाचने नचिकेतोवचः श्रुत्वा यम उवाच (औद्दालकिः) उद्दालकः—स्वार्थे तद्धितः (आरुणिः) अरुणस्यापत्यम्—वाजश्रवसः (यथा) प्रेमान्वितः (पुरस्तात्) पूर्वमासीत् तथैव (मत्प्रसृष्टः) मयानुज्ञातः प्रज्ञापितो वा (प्रतीतः) सएवायं नचिकेता इति प्रत्यभिजानन् शान्तः (भविता) भविष्यति। मयाऽनुज्ञातो मत्कृपया शेषा अपि (रात्रीः) (सुखम्) सुखपूर्वकं प्रसन्नचेताः (शयिता) शयनं करिष्यति (वीतमन्युः) विगतशोकक्रोधः (मृत्युमुखात्) मरणभयात् (प्रमुक्तम्) पृथग्भूतम् (त्वाम्) नचिकेतसमपुत्रम् (ददृशिवान्) द्रक्ष्यति। भविष्यत्यत्र क्वसुः॥

इदमुक्तं भवति—यदा कश्चिद्बालो मातापितृविहीनो मृत्युवशमाप्नुयात्तदा पित्रादयो जानन्ति ममात्मजो न कथमपि पुनर्मेलिष्यति यदि पुनरागच्छेत्तदा मृत्युमुखादागतं जानन्ति वाजश्रवसेन च ज्ञातं सत्यप्रतिज्ञो ममात्मजो मद्वचनान्मरणमवाप्स्यति नास्ति सम्भवो यत्पुन-

रागच्छेदिति । यमराजेन च सर्वथाऽसंभवस्यापि संभवो दर्शितः स च देवशक्तिप्रभावः ॥११॥

भावार्थ—पहिला वर मागने विषयक नचिकेताका वचन सुनकर यमराज फिर बोले कि (औद्दालकिः) उद्दालक (आरुणिः) अरुण नाम वाजश्रवाके पुत्र वाजश्रवस तेरे पिता (यथा) जिस प्रकार प्रेम प्रीतिसे वर्ताव करने वाले (पुरस्तात्) पहिले थे वैसे ही (मत्प्रसृष्टः) मेरी आज्ञा वा कृपासे (भविता) होंगे । मेरे वरदानसे तुम्हारे पहुंचनेमें शेष रही (रात्रीः) रात्रियोंमें भी (सुखम्) सुखपूर्वक प्रसन्न चित्तसे (शयिता) सोवेंगे (वीतमन्युः) क्रोध वा शोक रहित हुए (मृत्युमुखात्) मरणभयसे (प्रमुक्तम्) पृथक् हुए (त्वाम्) तुम नचिकेता अपने पुत्रको (ददृशिवान्) देखेंगे ॥

अभिप्राय यह है कि जब कोई माता पितासे पृथक् वियुक्त हुआ बालक मृत्यु वा यमके आधीन हो जाता है तब अतिस्नेही पिता आदि जानते हैं कि हमारा पुत्र अब किसी प्रकार फिर नहीं मिलेगा यदि दैवयोगसे फिर आजावे तो मृत्युके मुखसे छूटा जानते हैं । वाजश्रवस ऋषिने भी जाना कि मेरा पुत्र प्रतिज्ञाको सत्य करने वाला है मेरे वचनसे कि तुझे मृत्युको दूंगा शरीर त्याग देगा मेरे पास फिर आवे यह सम्भव नहीं, यमराजने दैवीशक्तिके प्रभावसे सब प्रकार असंभव सी बातको संभव कर दिखादिया ॥ ११ ॥

स्वर्गे लोके भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति । उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१२॥

अ०—द्वितीयं वरं याचमानो नचिकेता आह

हे (मृत्यो) यमराज! (स्वर्गे) सर्वोत्तमसुखप्रापके (लोके) दर्शनीये यज्ञादिवैदिककर्मानुष्ठानेन प्रापणीये स्थानविशेषे (किञ्चन) किमपि रोगादिजन्यम् (भयम्) (न, अस्ति) (न, तत्र, त्वम्) हे मृत्यो तत्र त्वमपि सहसा न प्रभवसि यथा मानुषे लोके त्वदीया गतिरस्ति न तथा देवेषु (न) नच (जरया) जरां दृष्ट्वा वैर्बल्यदुःखेन कश्चित् प्राणी स्वर्गे (बिभेति) नहि निर्जरसन् जरा बाधते किन्तु (अशनायापिपासे) उपलक्षणमेतन्मानापमानशीतोष्णादिद्वन्द्वानाम् । बुभुक्षापिपासादि द्वन्द्वदुःखे (उभे) (तीर्त्वा) अतिक्रम्य [न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्तीति छान्दोग्यश्रुतिः] (शोकातिगः) शोकमतीत्य गच्छतीति शोकातिगो मनुजः (स्वर्गलोके) (मोदते) ब्रह्माण्डे ये लोकाः सुखभोगस्य पूर्णसामग्रीसाधनसिद्धा यतः परं सुखभोगासम्भवस्तएव स्वर्गलोकास्तेषु प्राणिनः क्षिप्रंक्षिप्रं जन्ममरणे नाप्नुवन्ति वृद्धावस्थाजन्यं च दुःखं न जायते [पञ्चविंशतिवार्षिका युवानइवैव भवन्त्यतएव निर्जरा उच्यन्ते] तत्त्वज्ञाः सन्तो मृत्योरपि न बिभ्यति मानुषजन्मापेक्षया तेषामुत्कृष्टत्वं नतु मोक्षापेक्षयेति मया श्रुतं तत्र किन्तत्त्वमिति ॥ १२ ॥

(The immortality does not imply absol-
-ute immortality but the long life of Devas
[illegible] positions till [illegible] Kalpa [illegible]

भा०—द्वितीय वरको मांगनेकी इच्छासे नचिकेता बोला कि हे (मृत्यो) यमराज ! (स्वर्गे) सर्वोत्तम सुख प्राप्तिके हेतु (लोके) यज्ञादि वैदिक कर्मके अनुष्ठानसे प्राप्त होने या दर्शनीय स्थान विशेष [जिसमें दुःखकी सामग्रीका प्रायः अभाव तथा सुखसामग्रीकी अधिकता हो] (किञ्चन) कुछ भी रोगादिसे होने वाला (भयम्) डर (न) नहीं (अस्ति) है (न तत्र त्वम्) हे मृत्यो यमराज ! वहां स्वर्गलोकमें तुम भी समर्थ नहीं होते कि चाहो जिसे मारडालो जैसे मनुष्योंको झटपट तुम मार डालते हो वैसे देवोंको नहीं मार सकते (न) और न कोई प्राणी निर्बलताके दुःखसे (जरया) वृद्धावस्थाको देखकर (बिभेति) डरता है अर्थात् अजर अमर होनेसे देवोंको जरावस्था नहीं सताती है (अशनायापिपासे) भूख प्यास शीत उष्ण मान अपमान आदि (उभे) दो २ द्वन्द्व दुःखोंको (तीर्त्वा) छुड़ाके (शोकातिगः) शोकसे पार हुआ मनुष्य (स्वर्गलोके) स्वर्गलोकमें (मोदते) आनन्द करता है। [छान्दोग्य श्रुतिमें कहा है कि देवता लोग कुछ भी मनुष्य वत् खाते पीते नहीं किन्तु अमृतको देखकर तृप्त हो जाया करते हैं] ब्रह्माण्डमें जो लोक सुख भोगकी पूर्ण सामग्रीरूप साधनोंसे सम्पन्न हैं जिनसे परे और अधिक सुखका भोग होना असम्भव है वे ही स्वर्गलोक हैं उनमें प्राणी शीघ्र २ जन्म मरण को नहीं प्राप्त होते वृद्धावस्थाका दुःख भी वहां नहीं होता तत्त्वज्ञ हुए मृत्युसे वे स्वर्गीय जन नहीं डरते [देवता पच्चीस वर्षके युवाके तुल्य रहते हैं इसीसे वे निर्जर कहाते हैं] मनुष्यादिकी अपेक्षा उनका सुख अधिक है किन्तु मुक्तिकी अपेक्षासे नहीं, यह मैंने सुना है इसमें तत्त्व क्या है ?॥१॥

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प-
ब्रूहि तं श्रद्दधानाय मह्यम् । स्वर्गलो-

का अमृतत्वं भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे व-
रेण ॥१३॥

अ०—नचिकेता: पुनराह। हे (मृत्यो) (स:, त्वम्) (स्वर्ग्यम्) स्वर्गप्राप्ते: साधनभूतम् (अग्निम्) अग्निप्रधानमग्निहोत्रादिकं श्रौतं कर्म (अध्येषि) स्मरसि जानासि (तम्) अग्निहोत्रादियज्ञम् (श्रद्दधानाय) (मह्यम्) (प्रब्रूहि) येन (स्वर्गलोका:) स्वर्गो लोको येषां ते यज्ञानुष्ठातारो यजमाना: (अमृतत्वम्) दीर्घकालजीवनमपि सद्य: सद्यो मृतजातापेक्षयाऽमृतं भवति तद्देवत्वम् (भजन्ते) सेवन्ते, एतदहं (द्वितीयेन) (वरेण) (वृणे) याचे। नचिकेतसा प्रथमेन वरेण सर्वधर्मेषु प्रधानं पितृसेवनं तत्प्रसादश्च तदेव याचितं स च मृत्युलोकीयो वर:। अनेन द्वितीयेन जन्मान्तरीयोत्तमस्वर्गलोकप्राप्तिसाधनज्ञानं याचितम्। नात: परमनयोर्लोकयोरुत्कृष्टमस्ति यदिच्छेन्नचिकेता:। अनेन नचिकेतसो बुद्धेरतितरां प्राशस्त्यं ज्ञाप्यते ॥ १३ ॥

भा०—नचिकेता फिर बोला कि हे (मृत्यो) यमराज ! (स:, त्वम्) सो आप (स्वर्ग्यम्) स्वर्ग प्राप्तिके साधन (अग्निम्) अग्नि जिनमें प्रधान है उस अग्निहोत्रादि श्रौतकर्म को (अध्येषि) जानते हो (तम्) उस अग्निहोत्रादि यज्ञ

(Support of the world (—29 ii) the form learned.
macro-cosmic physical life of Viraj

के विधानको (श्रद्दधानाय) श्रद्धा रखते हुए (मह्यम्) मेरे लिये (प्रब्रूहि) कहिये (स्वर्गलोकाः) स्वर्गमें जिनका निवास होना न्यायानुकूल है वे यज्ञके सेवन करने वाले यजमान लोग (अमृतत्वम्) बहुतकाल तक सुखपूर्वक निर्विघ्न जीवनरूप देवत्व को (भजन्ते) भोगते हैं (एतत्) यह मैं (द्वितीयेन) द्वितीय (वरेण) वरदानसे (वृणे) मांगता हूं । नचिकेताने प्रथम वरदानसे सब सांसारिक धर्मोंमें मुख्य पिताकी सेवा और प्रसन्नता मांगी यह मृत्युलोक सम्बन्धी वर है । और इस द्वितीय वरदानसे जन्मान्तर सम्बन्धी उत्तम स्वर्गलोककी प्राप्तिके साधनोंका ज्ञान मांगा क्योंकि इन दोनों लोकोंमें इससे बड़ा कोई मांगने योग्य विषय नहीं था जिसको नचिकेता मांगता इससे नचिकेताकी बुद्धिकी अत्यन्त प्रशंसा ज्ञात होती है ॥ १३ ॥

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्नि-
न्नचिकेतः प्रजानन् । अनन्तलोकाप्तिमथो
प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतन्निहितं गुहायाम् ॥ १४ ॥

अ०—यमराजआह—हे (नचिकेतः) (स्वर्ग्यम्) स्वर्गाय हितम् (अग्निम्) (प्रजानन्) अहम् (ते) तुभ्यम् (तत्) यत्त्व ज्ञातुमभीष्टं तत् (प्रब्रवीमि) (उ) (मे) मम वचः सावधानतया (निबोध) बुध्यस्व (त्वम्) (अनन्तलोकाप्तिम्) स्वर्गलोकप्राप्तिसाधनमधिकजीवनेन विस्तृतदर्शनस्य प्रापकम् (अथो) अनन्तरम् (प्रतिष्ठाम्) सर्वस्य जगतः स्थितिसाधनम्, सूर्यादिरूपेण विराड्रूपेण जाठररूपेण

वा (एनम्) उक्तप्रकारमग्निम् (गुहायाम्) बुद्धौ (निहितम्) जीवात्मशक्तिरूपं रुधिरादिनिर्मापकं सूर्यादिरूपेण व्यापकं संस्कारजन्यवासनारूपासु बुद्धिवृत्तिषु वा स्थितम् (विद्धि) जानीहि । अग्निः सर्वस्य जगत उत्पत्तिस्थितिविनाशहेतुः सएव यज्ञस्य मुख्यसाधनभूत इत्यर्थः ॥ १४ ॥

भा०—यमराज बोले कि—हे (नचिकेतः) नचिकेता (स्वर्ग्यम्) स्वर्गके लिये हितकारी (अग्निम्) अग्निहोत्रादि कर्मको (प्रजानन्) जानता हुआ मैं (ते) तेरे लिये (तत्) जिसको तू जानना चाहता है उसको (प्रब्रवीमि) कहता हूं (उ) और तुम (मे) मेरे वचनको सावधान हो कर (निबोध) सुनो वा जानो (त्वम्) तुम (अनन्तलोकाप्तिम्) स्वर्गलोक प्राप्तिका साधन अधिक जीवनसे विस्तृत दर्शनको प्राप्त कराने वाले (अथो) इसके अनन्तर (प्रतिष्ठाम्) सूर्यादिरूप विद्युद्रूप वा जाठरादि रूपसे सब जगत्की स्थितिके साधन (एनम्) इस उक्त गुण युक्त (गुहायाम्) बुद्धिमें (निहितम्) जीवात्मशक्तिरूप रुधिर आदि बनाने वाले वा सूर्यादि रूपसे व्यापक वा संस्कारोंसे हुई वासनारूप बुद्धिकी वृत्तियोंमें स्थित अग्निको (विद्धि) जानो जिसके आश्रय अग्निहोत्रादि यज्ञ होनेसे स्वर्ग मिलता है वह अग्नि सब जगत्की उत्पत्ति स्थिति विनाशका हेतु है वही यज्ञका मुख्य साधन है ॥ १४॥

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा । स चापि प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः १५॥

as it has been told to him; then Death, pleased at this [illegible] again.

अ०—इदं श्रुतेर्वचनम्—यमः (तस्मै) नचिकेतसे (लोकादिम्) लोकस्य दर्शनस्यादिं कारणभूतम् । लोकनं लोको भावे घञ् । अथवा कर्मण्येव घञ् लोक्यते जनैर्यः स लोकउत्पत्तेरादिभूतम् । प्रादुरासीत्तमोनुदइति वचनात्सर्गारम्भे प्रकाशात्माग्निरुत्पन्नः स च व्याप्तः सूक्ष्मः । चक्षुरिन्द्रियं चाग्निकारणादेवोत्पन्नम् । अतोग्निर्लोकादिः । अथवा लोकानामादिः प्रथमशरीरी तं विधात्तरूपम् । (तम्) प्रकृतम् (अग्निम्) (उवाच) सर्वप्रकारेण व्याख्यातवान् । अग्निसाध्येऽग्निष्टोमादियज्ञे (याः) यादृश्यः (वा) (यावतीः) यावत्संख्याकाः (वा) (यथा) येनप्रकारेण (इष्टकाः) चेतव्या येन विधिनाग्निष्टोमादियज्ञोऽनुष्ठेयइत्येतत्सर्वं फलाख्यानादिसहितमुवाच (सः, चापि) नचिकेताअपि (यथा) येन प्रकारेण मृत्युना विधानम् (उक्तम्) (अथ) अनन्तरम् (अस्य) यमस्य वचः (प्रत्यवदत्) प्रत्यक्षरमनुवादं कृतवान् । एतस्नचिकेतसो बुद्धिवैचित्र्यं दृष्ट्वा (मृत्युः) यमः (तुष्टः) अधिकं प्रसन्नो याचितादन्यदपि वरं दातुम् (पुनरेवाह) आवश्यकं तोषप्रेरितआहेति एवार्थः ॥ १५ ॥

भा०—अब श्रुति स्वयं कहती है कि यमराजने (तस्मै) उस नचिकेताके लिये (लोकादिम्) देखनेके आदि कारण वा सृष्टिके आरम्भमें सबसे पहिले प्रकाशरूपसे उत्पन्न होने वाले अथवा सब लोगोंका आदि विधातारूपसे पहिला देहधारी (तम्) उस पूर्वोक्त (अग्निम्) अग्निका (उवाच) सब प्रकार व्याख्यान किया। अग्निसे सिद्ध होने वाले अग्निष्टोमादि यज्ञमें (याः) जैसी (वा) वा (यावतीः) जितनी (वा) वा (यथा) जिस विधान से वेदी में (इष्टकाः) ईंटें चिननी चाहिये अर्थात् जैसी वेदि बनाकर जिस विधिसे यज्ञ करना चाहिये सो सब फल सहित यमराजने कहा (सः, अपि) वह नचिकेता भी (यथा) जिस क्रमसे यमराजने यज्ञका विधान (उक्तम्) कहा (अथ) इसके पश्चात् (अस्य) यमराजके वचनको (प्रत्यवदत्) प्रत्यक्षर अनुवाद कर सुनाया नचिकेताकी बुद्धिकी ऐसी विचित्रता देखकर (मृत्युः) यमराजको (तुष्टः) अधिक प्रसन्न हो कर मांगे हुए से अन्यवर देनेको (पुनरेवाह) प्रसन्नतासे प्रेरित हो कर अवश्य बोलने पड़ा ॥ १५ ॥

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरन्तवेहाद्य ददामि भूयः। तवैव नाम्ना भविताऽयमग्निः सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥ १६॥

अ०—शिष्ययोग्यतां दृष्ट्वा (प्रीयमाणः) प्रीतिमापन्नः (महात्मा) महती आत्मा व्याप्राऽव्याहता बुद्धिरस्य स यमः (तम्) नचिकेतसम् (अब्रवीत्) (भूयः) पुनरपि (इह) अस्मिन् द्वितीयवरप्रसंगे (तव) तुभ्यम्, चतुर्थ्यर्थे षष्ठी

(अद्य) इदानीम् (वरम्) (ददामि) (अयम्) मदुक्तविधानः (अग्निः) (तवैव) (नाम्ना) तव नामप्रसिद्धः (भविता) भविष्यति (इमाम्, च) (अनेकरूपाम्) चित्रविचित्राम् (सृङ्काम्) मालां प्रतिष्ठासूचकं चिन्हम् । यद्वा संसारस्थसुखभोगसृतिं स्वर्गनाम्नीम् (गृहाण) स्वीकुरु येन दीर्घकालं जीवनसुखमवाप्नुहि । नहीदं वरान्तरदानमपितु यावद्याचितं तस्मिन्नेव विषये प्रीतिविशेषकारणात्ततोऽधिकं दीयते ॥ १६ ॥

भा०—शिष्य की योग्यता देख कर (प्रीयमाणः) प्रसन्न हुए (महात्मा) व्याप्त बुद्धिवाले यमराज (तम्) उस नचिकेता से (अब्रवीत्) फिर बोले कि (भूयः) फिर भी (यह) इस द्वितीयवर के साथ (तव) तुम्हारे लिये (अद्य) इस समय (वरम्) वर को (ददामि) देता हूं (अयम्) जिस का विधान कहा गया वह (अग्निः) अग्नि (तवैव) तुम्हारे ही (नाम्ना) नाम से प्रसिद्ध (भविता) होगा (इमाम् च) और इस (अनेकरूपाम्) चित्रविचित्र (सृङ्काम्) शब्दमयी वा रत्नमयी माला वा प्रतिष्ठासूचक चिन्हको अथवा संसारमें विशेष सुखभोगरूप स्वर्ग प्राप्तिको (गृहाण) स्वीकार करो जिससे बहुत काल तक जीवन सुख प्राप्त हो। यह तीनसे पृथक् वरदान नहीं किन्तु जितना मांगा था उसी द्वितीय वर के संबन्धमें प्रीति विशेष होनेके कारण उससे अधिक दिया है ॥ १६ ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्त

रति जन्ममृत्यू। ब्रह्मजज्ञन्देवमीड्यं विदि-
त्वा निचाय्येमाꣳ शान्तिमत्यन्तमेति॥ १७॥

अ०—इदानीं प्रसङ्गप्राप्तं कर्मस्तवमाह (त्रिणाचिकेतः) यस्य विधानं नचिकेतसे प्रोक्तं स नचिकेतोनाम्ना प्रसिद्धो नाचिकेतोऽग्निः स त्रिवारं येन चीयते स त्रिणाचिकेतः (त्रिभिः) मातापित्राचार्य्यैः (सन्धिम्) सत्संगं शिक्षां वा (एत्य) प्राप्य (त्रिकर्मकृत्) त्रीणि यज्ञाध्ययनदानानि करोति सः। यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः। (जन्ममृत्यू) जन्ममरणे (तरति) जहाति तज्जन्यदुःखान्मुक्तो भवति (ब्रह्मजज्ञम्) ब्रह्म वेदो जो जातो यस्मात्स ब्रह्मजः, जानातीति ज्ञः, ब्रह्मजश्चासौ ज्ञश्च तं सर्वज्ञम् (ईड्यम्) स्तोतुमर्हम् (देवम्) दीप्यमानं परमात्मानम् (विदित्वा) ज्ञात्वा (निचाय्य) शास्त्रतो निश्चित्य (अत्यन्तम्) क्रियाविशेषणम् (शान्तिम्) निरुपद्रवरूपाम् (एति) प्राप्नोति। त्रयी धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः। इति छान्दोग्योपनि० प्र० २ ख० २३॥ इदमुक्तं भवति ये ब्रह्मचर्य्यादित्रिष्वाश्रमेषु त्रिविध आहवनीयादिनाम्न्यग्नौ यथाविधि यज्ञादिकर्म कृत्वाऽऽत्म ज्ञानाय प्रयतन्ते तएव शान्तिसुखभाजो भवन्ति ॥ १७ ॥

भा०--अब प्रसंगसे प्राप्त कर्मकी महिमा कहते हैं। (त्रि-णाचिकेतः) नचिकेताके लिये जिसका विधान कहा है वह नचिकेताके नाम सहित प्रसिद्ध नाचिकेत अग्नि कहाता है उसको जो ब्रह्मचर्यादि तीन आश्रमोंमें आहवनीयादि नाम से संचित करे वह त्रिणाचिकेत पुरुष (त्रिभिः) माता पिता और आचार्यसे (सन्धिम्) सत्संग वा शिक्षाको (एत्य) प्राप्त होकर (त्रिकर्मकृत्) गृहस्थ वा वानप्रस्थ आश्रममें अ-ग्निहोत्रादि यज्ञ ब्रह्मचर्यमें वेद वेदाङ्गादि पढ़ने आदि के नियम तथा वानप्रस्थ संन्यास आश्रममें सर्वस्वदान करता है ये ही तीन धर्मरूपवृक्षके मुख्य अवयव (गुद्दे) हैं जो फल भोगकी अभिलाषाको छोड़कर इन उक्त तीन प्रकारके धर्मों को करता है वह (जन्ममृत्यू) जन्म मरण रूप समुद्रके पार हो दुःखोंसे छूटजाता है अर्थात् जीवन्मुक्त होता है (ब्रह्म-जज्ञम्) जिससे वेद उत्पन्न हुआ तथा जो ज्ञानस्वरूप है उस (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (देवम्) प्रकाशमान परमात्मा को (विदित्वा) जानकर और (निचाय्य) शास्त्रसे निश्चय कर (अत्यन्तम्) अत्यन्त (शान्तिम्) सर्व उपद्रवोंसे रहित शान्तिको (एति) प्राप्त होता है। अभिप्राय यह है कि जो ब्रह्मचर्य्यादि तीनों आश्रमोंमें तीन प्रकारके आहवनीयादि नामक अग्निमें विधिपूर्वक यज्ञादि कर्म करके आत्मज्ञानके लिये प्रयत्न करते हैं वेही शान्तिरूप सुखके भागी होते हैं ॥१७॥

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम्। स मृत्युपाशान् पुरतःप्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके १८

अ०--(त्रिणाचिकेतः) नाचिकेतमग्निं त्रि-वारं तिसृष्ववस्थासु चेता जनः (एतत्) पूर्वो-

कम् (त्रयम्) त्रिवारम् चयनं मात्रादिभिः शि-
क्षणं त्रिकर्मकर्तृत्वं च यद्वा याइष्टका यावतीर्वा
यथावेति त्रयम् (विदित्वा) (एवम्) मदुक्त-
विधिना (यः, विद्वान्) (नाचिकेतम्) नचि-
केतोनाम्ना प्रसिद्धाग्निसम्बन्ध्यग्निहोत्रादिक-
र्मणः फलम् (चिनुते) सञ्चितं करोति (सः)
(मृत्युपाशान्) नैष्कर्म्याधर्मरागद्वेषादिलक्षणानि
बन्धनानि (पुरतः) शरीरवियोगात्पूर्वमेव (प्र-
णोद्य) विहायोपात्तं देहं त्यक्त्वा (शोकातिगः)
शोकरहितः (स्वर्गलोके) (मोदते) हर्षमाप्नोति॥१८॥

भा०—(त्रिणाचिकेतः) तीन अवस्थाओंमें नाचिकेत अग्निको तीनवार संचित करने वाला मनुष्य (एतत्) पूर्वोक्त (त्रयम्) तीनवार अग्निका चयन माता आदि तीन से शिक्षा और तीन यज्ञादि कर्मके करनेको (विदित्वा) जान के (एवम्) हमारे कहे विधान के अनुसार (यः, विद्वान्) जो विद्वान् पुरुष (नाचिकेतम्) नाचिकेत नामसे प्रसिद्ध अग्नि सम्बन्धी अग्निहोत्रादि कर्म के फल को (चिनुते) संचित करता है (सः) वह (मृत्युपाशान्) कर्मत्याग अधर्म रागद्वेषादि रूप मरणके बन्धनोंको (पुरतः) शरीर छूटने से पहिले ही (प्रणोद्य) छोड़कर मरण पश्चात् (शोकातिगः) शोक रहित हुआ (स्वर्गलोके) स्वर्गलोक में (मोदते) आनन्दको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वि-
तीयेन वरेण । एतमग्निन्तवैव प्रवक्ष्यन्ति
जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व॥१९॥

अ०—हे (नचिकेतः) (एषः) पूर्वोक्तः (अग्निः) तत्सहचरितोऽग्निहोत्रादिधर्मः (स्वर्ग्यः) स्वर्गाय हितः (ते) तुभ्यमुक्तइति शेषः (यम्) त्वम् (द्वितीयेन, वरेण) (अवृणीथाः) (एतम्) (अग्निम्) (तवैव) नाम्ना (जनासः) जनाः । छान्दसत्वादाऽऽज्जसेरसुक् (प्रवक्ष्यन्ति) यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनइति वचनान्महात्मना देवेन यमेन यथोक्तं तथैव नचिकेतोनाम्नाग्निरितरैराख्यायते । इदानीं द्वितीयवरस्य प्रसङ्गः समाप्तः । हे (नचिकेतः) त्वम् (तृतीयम्) (वरम) (वृणीष्व) याचस्व ॥ १९ ॥

भावार्थः—हे (नचिकेतः) नचिकेता (एषः) यह पूर्वोक्त (अग्निः) अग्निसम्बन्धी अग्निहोत्रादि धर्म (स्वर्ग्यः) स्वर्ग का उपयोगी साधन (ते) तुम्हारे लिये कहा गया (यम्) जिसको तुमने (द्वितीयेन, वरेण) दूसरे वरसे (अवृणीथाः) मांगा था (एतम्) इस (अग्निम्) अग्निको (तवैव) तुम्हारे ही नामसे (जनासः) मनुष्य (प्रवक्ष्यन्ति) कहेंगे । जैसा आचरण श्रेष्ठ पुरुष करते हैं वैसा अन्य सामान्य भी करते हैं इस प्रमाण के अनुसार महात्मा यमराजने जैसा कहा वैसा ही नचिकेता के नामसे अन्य लोग अग्निको कहते आये अब यहां तक द्वितीय वरका प्रकरण समाप्त होगया । हे (नचिकेतः) नचिकेता तुम (तृतीयम्) तीसरा (वरम्) वर (वृणीष्व) मांगो ॥ १९ ॥

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके

नायमस्तीति चैके। एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥२०॥

अन्वयः—वरद्वयसमाप्तौ तृतीयं वरं याचमानो नचिकेताआह। हे यमराज! (प्रेते) मृते (मनुष्ये) (अयम्) नित्यः शरीरस्थः शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्तः कश्चिच्चेतनात्मा देहान्तरसंबन्धी (अस्ति, इति, एके) मन्यन्तइति शेषः। (न, अस्ति, इति, च, एके) केचिन्मन्यन्ते। इति (या, इयम्) (विचिकित्सा) संशयः। (त्वया) देवेन (अनुशिष्टः) उपदिष्टः (अहम्) (एतत्) आत्मविद्यानिश्चयमूलम् (विद्याम्) जानीयाम्। (वराणाम्) मध्ये (एषः) (तृतीयः) ममाभीष्टः (वरः) अस्ति स त्वया देयइति भावः।

भावार्थः—विधिप्रतिषेधार्थेन श्रुतिस्मृत्यादिना कर्मोपासनाप्रतिपादकशास्त्रेण वरद्वयसूचितं वस्तु प्रेक्षावताऽवगन्तव्यमस्ति। हेयोपादेयशून्यस्यात्मनो ज्ञानं ततो विधिप्रतिषेधाद्विलक्षणं द्वितीयवरप्राप्त्यापि दुर्लभमभयाजरामरपदं शान्तं दुःखात्यन्ताभावावस्थं तादृशज्ञानप्रतिपादनमेवोपनिषदां मुख्यो विषयः। तत्प्रतिपादनायैवोत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते। पूर्वो

वरो लौकिको द्वितीयः पारलौकिकस्वर्गादिविषयकः । तृतीयश्चात्मज्ञानेन मोक्षविषयकः । आत्मज्ञानमन्तरेण कश्चिदपिमुक्तो भवितुं नार्हति।२०।

भाषार्थः--पहिले दो वरोंकी समाप्तिमें तीसरा वर मांगता हुआ नचिकेता बोला कि हे यमराज । (प्रेते) (मनुष्ये) मनुष्यके मरजाने पर (अयम्) यह शरीरस्थ देह इन्द्रिय मन और बुद्धिसे पृथक् चेतनात्मा जन्मान्तरमें जाने वाला कोई (अस्ति, इति, एके) है ऐसा अनेक लोग मानते (च) और (न, अस्ति, इति, एके) नहीं है ऐसा अनेक लोग मानते हैं इस प्रकार (या, इयम्) जो यह (विचिकित्सा) संशय है । सो (त्वया) आपसे (अनुशिष्टः) उपदेश पाया हुआ (अहम्) मैं (एतत्) इस आत्मविद्याके निश्चित कारणको (विद्याम्) जानूं (वराणाम्) वरोंमें (एषः) यह (तृतीयः) तीसरा मेरा अभीष्ट (वरः) वर है सो आपको देना चाहिये ॥

भावार्थः--कर्म उपासनाका प्रतिपादक विधिनिषेधरूप मन्त्र ब्राह्मणादि वेद शास्त्रसे ही उक्त दो वरसे सूचित वस्तु जाना जा सकता है । त्याग वा ग्रहण जिसका नहीं हो सकता ऐसे आत्माका ज्ञान उस विधिप्रतिषेधसे विलक्षण है द्वितीय वर प्राप्त होजाने पर भी दुर्लभ अभय अजर अमर शान्त जिसमें दुःखका अत्यन्ताभाव है वैसा ज्ञान कहना ही उपनिषदोंका मुख्य विषय है उसीके प्रतिपादनार्थ अगला ग्रन्थभाग कहाजाता है । पहिला वर लौकिक नाम इस लोक सम्बन्धी है दूसरा परलोक नाम जन्मान्तरमें होनेवाले स्वर्गादि विषयक और तीसरा आत्मज्ञानसे होनेवाले मोक्ष विषयक है क्योंकि चैतन्यरूप आत्माका ज्ञान हुए विना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती ॥२०॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा नहि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः । अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मामोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥२१॥

अ०—आत्मज्ञानाधिकारी नचिकेता अस्ति नवेति परीक्षां कर्त्तुं यमराज आह (पुरा) पूर्वस्मिन् काले (अत्र) अस्मिन्नात्मज्ञानविषये (देवैः) नैसर्गिकविद्यया द्योतमानैर्विबुधैः (अपि) (विचिकित्सितम्) संशयितम् । कोयमात्मा अस्ति नवेति कथं विज्ञातव्यइत्यादिप्रकारेण सन्देहः कृतः । यतः (एषः) आत्मज्ञानरूपः (धर्मः) (अणुः) अतिसूक्ष्मोऽस्ति । अतो (नहि) (सुविज्ञेयम्) एतदात्मतत्त्वं नहि सर्वैर्ज्ञातुं शक्यम् । आत्मज्ञानाय प्रयतमानः सर्वः फलभाक् स्यादित्यपि सन्दिग्धम् । हे (नचिकेतः) अतोऽसन्दिग्धफलम् । (अन्यम्) भिन्नम् (वरम्) (वृणीष्व) याचस्व । (मा) मामधमर्णमिवोत्तमर्णः (मा, उपरोत्सीः) उपरोधमृणधारिणं मा कुरु (मा) माम् (अति) प्रति (एनम्) वरम् (सृज) त्यज । एतादृशं कठिनं वरं विहाय सुगमं किमपि याचस्वेति भावः ॥ २१ ॥

भाषार्थः—नचिकेता आत्मज्ञानाधिकारी है वा नहीं इस बातकी परीक्षा करनेके लिये यमराज बोले कि (पुरा) पहिले

समयमें (अत्र) इस आत्मज्ञान विषय पर (देवैः) विद्यासे प्रकाशमान इन्द्रादि देवोंने (अपि) भी (विचिकित्सितम्) आत्मा कोई वस्तु है वा नहीं, है तो कैसा किस प्रकार जानने योग्य है इत्यादि प्रकारसे सन्देह किये जिस कारण (एषः) यह आत्मज्ञान रूप (धर्मः) गुण वा विषय (अणुः) अति सूक्ष्म है इस कारण (सुविज्ञेयम्) सबको सुगमतासे जानने योग्य (नहि) नहीं है। अर्थात् आत्मज्ञानके लिये उद्योग करने वाले फलको प्राप्तही हों यह नियम नहीं किन्तु यह सन्दिग्ध है। इससे हे (नचिकेतः) नचिकेता जिसके फल मिलनेमें सन्देह न हो ऐसे (अन्यम्) अन्य (वरम्) वरको (वृणीष्व) मांग (मा) मुझको ऋणीके तुल्य (मा, उपरोत्सीः) मत दबाओ मैं तुम्हारा ऋणी हूं सो ऐसा मत कहो कि मैं यही लूंगा और छोड़देनेसे मैं ऋणी बना रहूंगा, (मा) मेरे (अति) प्रति (एनम्) इस वरको (सृज) त्यागदो। ऐसे कठिन वरको छोड़कर कुछ सुगम वर मांगो ॥ २१ ॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वञ्च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ। वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥ २२ ॥

अ०—पुनर्नचिकेता आह—हे (मृत्यो) यमराज! (अत्र) अस्मिन्नात्मज्ञानविषये (देवैः, अपि) उक्तरीत्या (विचिकित्सितम्) (किल, त्वञ्च) (यत्सुविज्ञेयम्) (न) इति (आत्थ) ब्रवीषि। अत एवानुमीयतेऽतिक-

ठिनोऽयं वरोऽन्यपण्डितैरपि दुर्ज्ञेयत्वात् (अस्य) वरस्य (त्वादृक्) त्वत्सदृशः (वक्ता) (अन्यः) मयाऽन्विष्यमाणोऽपि (न, लभ्यः) (न, च) (एतस्य) (तुल्यः, अन्यः, कश्चित्,वरः)अस्ति। अस्य निःश्रेयसफलहेतुत्वादयमेव सर्वोपरि श्रेष्ठतमो वरः ॥ २२ ॥

भा०—फिर नचिकेता बोला कि हे (मृत्यो) यमराज! (अत्र) इस आत्मज्ञान विषय पर (देवैः, अपि) देवोंने भी उक्त रीतिसे (विचिकित्सितम्) संशय किया (त्वं, च, किल) और आप भी (यत्, सुविज्ञेयम् , न) जिस कारण सुगमतासे जानने योग्य नहीं ऐसा (आत्थ) कहते हैं इसीसे मैं अनुमान करता हूं कि यह वर अति कठिन है अन्य पण्डितोंसे भी दुर्ज्ञेय होनेसे (अस्य) इस वरका (वक्ता) उपदेश करने वाला मुझको (त्वादृक्) आपके तुल्य खोजने पर भी (न, लभ्यः) नहीं मिल सकता (च) और (न) न (एतस्य) इसके (तुल्यः, अन्यः, कश्चित्, वरः) तुल्य अन्य कोई वर है अर्थात् आत्मज्ञान मुक्तिसुखका कारण होनेसे यह सर्वोपरि अति श्रेष्ठ है इस लिये मैं इसको छोड़ कर अन्य क्या मांगूं ? ॥ २२ ॥

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्। भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि॥२३॥

अ०—पुनर्यमआह=हे नचिकेतस्त्वम् (शतायुषः) शतं वर्षाणि यावदायुर्येषां तान् (पु-

ऽपौत्रान्) पुत्रांश्च पौत्रांश्च (वृणीष्व) (बहून्) (पशून्) गवादीन् (हस्तिहिरण्यम्) हस्तिनो हिरण्यं चेति समाहारद्वन्द्वः (अश्वान्) (भूमेः) पृथिव्याः (महत्) (आयतनम्) स्थानमाश्रयं माण्डलिकं राज्यम् (वृणीष्व) (स्वयम्, च) स्वयमपि (यावत्) यावतः (शरदः) शरदृतूपलक्षितान्संवत्सरान् जीवितुम् (इच्छसि) तावत् पुत्रपौत्रादिसुखसामग्र्या सह (जीव) प्राणान् धारय। लौकिकसुखसम्पत्तौ प्रधानकारणानि पुत्रादय इत्यपि सूच्यते। मनुष्यस्य यावदायुः सम्भवति तावतोऽप्यधिकतमं देवप्रसादाद्भवितुमर्हति ॥२३॥

भाषार्थः—फिर यमराज बोले कि हे नचिकेतः ! तू (शतायुषः) सौ बर्ष की अवस्था वाले (पुत्रपौत्रान्) पुत्र पौत्रों को (वृणीष्व) मांग तथा (बहून्) बहुत (पशून्) गौआदि पशुओं (हस्तिहिरण्यम्) हाथी सुवर्ण (अश्वान्) घोड़ों को मांग और (भूमेः) पृथिवीके (महत्) बड़े भाग (आयतनम्) माण्डलिक राज्य को (वृणीष्व) मांगो (च) और (स्वयम्) आप भी (यावत्) जितने (शरदः) शरदृतु सम्बन्धी वर्षों तक जीवन की इच्छा करते हो उतने काल पर्यन्त पुत्र पौत्रादि सुखकी सामग्री सहित (जीव) जीवो ऐसा वरदान हम दे सकते हैं। इस प्रसंग में यह भी सूचित होता है कि लौकिकसुखकी सिद्धिमें मुख्य कारण पुत्रादि हैं। मनुष्य की जितनी उमर होना सम्भव है उतनीसे भी सहस्रों वा लाखों वर्ष का अत्यन्त अधिक आयु देवता के वरदानसे हो सकता है ॥२३॥

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकाञ्च। महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानान्त्वा कामभाजं करोमि ॥२४॥

अ०-(यदि) (एतत्तुल्यम्) एतेन पूर्वोक्तेन तुल्यं सदृशं सुखभोगसाधनम् (मन्यसे) तर्हि तमपि (वरम्) (वृणीष्व) (वित्तम्) सुवर्णरत्नादिभोगसाधनमैश्वर्यम् (च) तेनसह(चिरजीविकाम्) चिरस्थायिनीं जीविकामनवधिकं जीवनमपि वृणीष्व। हे (नचिकेतः) (त्वम्) (महाभूमौ) महत्यां मेदिन्यां प्रतापवान् राजा (एधि) भव। अहम् (त्वा) त्वाम् (कामानाम्) अभिलषितविषयाणाम् (कामभाजम्) इच्छासेविनम् (करोमि) अर्थात् सर्वाणि लौकिकसुखानि तुभ्यं दद्यां तानि भुङ्क्ष्व दिव्य मानुषभोगानां मध्ये यं कमपि दुर्लभमपि भोग मिच्छसि तं सर्वं दातुं शक्तोऽहं देवस्य सत्यसंकल्पत्वादिति यमस्याशयः ॥२४॥

भावार्थः—यमराज फिर बोले कि (यदि) जो (एतत् तुल्यम्) इस पूर्वोक्त के तुल्य सुख भोगके साधन और भी (मन्यसे) मानते होतो उस (वरम्) वरको भी (वृणीष्व) मागो (वित्तम्) सुवर्ण रत्नादि भोगका साधन, ऐश्वर्य (च) और साथही (चिरजीविकाम्) चिरस्थायी लाखों वर्ष तक जीवित रहना भी मागो। हे (नचिकेतः) नचिकेता (त्वम्) तुम

(महाभूमौ) बहुत अधिक बड़ी पृथिवी पर प्रतापी राजा (एधि) होजाओ । मैं (त्वा) तुमको (कामानाम्) अभीष्ट विषयों की (कामभाजम्) इच्छा को प्राप्त होने वाला (करोमि) करता हूं अर्थात्—सब लौकिकसुख तुम्हें देता हूं उन को भोगो दिव्य और मानुष दो प्रकारके भोगोंमें से तुम जिस किसी दुर्लभ भोग को भी चाहते हो उस सभी काम भोगको सत्यसंकल्प देवता होनेसे हम दे सकते हैं यह यमराज का अभिप्राय है ॥ २४ ॥

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वा-
न्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व । इमा रामाः
सरथाः सतूर्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो
मरणं मानुप्राक्षीः ॥ २५ ॥

अ०—(मर्त्यलोके) मनुष्यसृष्टौ जनसमुदाये (ये ये) (दुर्लभाः) (कामाः) सन्ति तान् (सर्वान्) (कामान्) (छन्दतः) यथेष्टम् (प्रार्थयस्व) (इमाः) (सरथाः) रथैरमणसाधनैर्यानैः सह वर्त्तमाना रथारूढाः (सतूर्याः) वादित्रादिवादनसहिताः (रामाः) रमयन्ति हावभावैः प्रसादयन्ति पुरुषानिति रामाः सुरूपवत्यो दिव्या अप्सरसो मया तुभ्यं दीयन्ते (ईदृशाः) मादृशाद्देवप्रसादमन्तरेण (मनुष्यैः) मृत्युलोकस्थैः (नहि) (लम्भनीयाः) प्राप्याः कि-

न्त्वादृशा अप्सरसो देवैरेव प्राप्याः (मत्प्रत्ताभिः) मया दत्ताभिः (आभिः) दिव्याङ्गनाभिः (परिचारयस्व) हे (नचिकेतः) (मरणम्) मरणसंबद्धमात्मज्ञानविषयम् (मानुप्राक्षीः) मापृच्छ ॥ २५ ॥

भाषार्थः—(मर्त्यलोके) मृत्युलोकमें (ये ये) जो २ (कामाः) कामना प्राप्त होनी (दुर्लभाः) दुर्लभ हैं उन (सर्वान्) सब (कामान्) कामनाओं को (छन्दतः) स्वतंत्रता से यथेष्ट (प्रार्थयस्व) मांगो (सरथाः) सुख के साधन दिव्ययानों पर चढ़ी हुई (सतूर्याः) जिन के साथ बाजे आदि बजते हैं ऐसी (रामाः) हावभावों से पुरुषों को प्रसन्न करने वाली सुरूपवती (इमाः) ये दिव्य अप्सरा मैं तुमको देता हूं। (ईदृशाः) ऐसी सर्वोत्तम सुन्दरी अप्सरा हमारे जैसे देवता की प्रसन्नता के विना (मनुष्यैः) मनुष्यों को (नहि) नहीं (लम्भनीयाः) प्राप्त हो सकतीं किन्तु ऐसी अप्सरा देवोंको ही प्राप्त हो सकती हैं (मत्प्रत्ताभिः) मैं ने दी हुई (आभिः) इन दिव्य अङ्गनाओं से (परिचारयस्व) अपनी सेवा शुश्रूषा कराओ। हे (नचिकेतः) नचिकेता ! (मरणम्) मरण सम्बन्धी आत्मज्ञान विषयको (मानुप्राक्षीः) मत पूछो ॥२५॥

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः । अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥२६॥

अ०—एवमुक्तप्रकारेण बहुविधं लोभितोऽपि नचिकेताः सर्वे लौकिकसुखभोगा अनित्या दुःखपरिणामास्तुच्छा इति मत्वा न लुब्धः पुन-

श्चतुर्भिर्मन्त्रैः स्वाभीष्टमाह—हे (अन्तक) दुष्टकर्मकारिणामन्तकृन्नाशक यमराज ! (श्वोभावाः) श्व आगामिनि दिवसे भविष्यन्ति नवा भविष्यन्तीत्यागमापायवन्तोऽनित्याः सर्वे संसारस्थस्त्र्यादिसम्बन्धिनो दिव्याप्सरःसम्बन्धिनश्च सुखभोगाः (मर्त्यस्य) (सर्वेन्द्रियाणाम्) चक्षुरादीनाम् (तेजः) (जरयन्ति) यच्च तत्र भवान् चिरजीविकां दातुमिच्छति तत् (सर्वम्) (अपि) (जीवितम्) (अल्पमेव) यदा ब्रह्मणोऽपि जीवनमल्पमेव तदाऽन्येषामस्मदादीनां जीवनमल्पतरं ततो न्यूनमेव सम्भवति। यच्चोक्तं रथादिसहिता रामा दीयन्ते तत्रापि शृणु (वाहाः) रथादिवाहनानि (तवैव) सन्तु (नृत्यगीते) तूर्यशब्दसूचिते (तव) तवैव भवेताम् ॥ २६ ॥

भा०—इस उक्त प्रकार अनेकविध लुभाया हुआ भी नचिकेता सब लौकिक सुखभोग अनित्य, परिणाम में दुःखदायी और तुच्छ हैं ऐसा मानके लोभको प्राप्त नहीं हुआ। फिर अपने अभीष्ट को चारमन्त्रोंसे कहता है। हे (अन्तक) दुष्टकर्म कारियोंका नाश करने वाले यमराज (श्वोभावाः) जो भोग इस समय हैं वे कल रहेंगे वा नहीं इस प्रकार उत्पत्ति नाश वाले स्त्री आदिके साथ होने वाले लौकिक तथा दिव्य अप्सराओं सम्बन्धी सब सुख भोग अनित्य होते हुए (मर्त्यस्य) मनुष्यके (सर्वेन्द्रियाणाम्) सब इन्द्रियोंके (तेजः) प्रताप बल वा शोभाको (जरयन्ति) नाश करदेते हैं। और

जो आप बहुत काल जीवन देने को कहते हैं सो (सर्वम्) सब (अपि) भी (जीवितम्) जीवन (अल्पम्, एव) थोड़ा ही है अर्थात् मुक्तिके नित्य अविनाशी सुखकी अपेक्षा लाखों वर्षका जीवन भी तुच्छ है जब एक महाकल्पतक रहने वाला ब्रह्माजी का जीवन भी थोड़ा है तब अस्मदादिका जीवन तो उससे भी बहुत कम होना संभव ही है। और जो रथादि सहित सेवन करने वाली सुन्दरी अप्सरा आप देना चाहते हैं सो वे (वाहाः) रथआदि वाहनों सहित दिव्य स्त्रियां (तवैव) आपकी ही रहें और (नृत्यगीते) नाचना गाना बजाना भी (तव) आपका ही रहो मैं नहीं चाहता ॥२६॥

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा । जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥२७॥

अ० (मनुष्यः) (वित्तेन) भोगेन । वित्तो भोगप्रत्यययोरिति निपातनम् (न, तर्पणीयः) तृप्तो भवितुन्नार्हः। नहि वित्तलाभः कस्यापि तृष्णापूरको दृश्यते (चेत्) यदि (त्वा) त्वाम् (अद्राक्ष्म) दृष्टवन्तस्तर्हि (वित्तम्) भोगम् (लप्स्यामहे) प्राप्स्याम एव भवत्कृपातः (यावत्) कालम् (त्वम्) (ईशिष्यसि) ममेश्वरः प्रभुरध्यक्षः स्वामी रक्षको भविष्यसि तावत् (जीविष्यामः) प्राणान् धारयिष्यामः। अतो मया चिरजीविकापि वरपक्षे न याचनीया । एतद्द्वयं कर्मानुकूलमन्यैरपि लभ्यम् । य-

स्योपरि भवादृशानां कृपास्ति स यावत्प्रयोजनं सुवर्णाद्यैश्वर्यभोगं प्राप्स्यत्येव ममोपरि तु भवदीया विशिष्टा कृपास्ति तस्याः साधारणं वित्तादियाचनं फलमनुचितम् । अतः (मे) मम (वरस्तु) (सएव) (वरणीयः) प्रार्थनीयो नान्यः ॥ २७ ॥

भा०—(वित्तेन) ऐश्वर्यके भोगसे (मनुष्यः) मनुष्य (न तर्पणीयः) तृप्त नहीं हो सकता धनाद्यैश्वर्यकी प्राप्तिसे किसी की तृष्णा पूरी होते नहीं देखीजाती है । इसलिये मैं धन वा ऐश्वर्यका भोग नहीं मांगता (चेत्, त्वा) जो आपका (अद्राक्ष्म) दर्शन हुआ है तो (वित्तम्) ऐश्वर्य भोग आपकी कृपासे (लप्स्यामहे) प्राप्त होंहीगे (यावत्) जबतक (त्वम्) आप (ईशिष्यसि) मेरे स्वामी रक्षक बने रहोगे तबतक (जीविष्यामः) प्राणयात्रा चलेगी । इस कारण मैं चिरजीवन भी वरपक्षमें नहीं मांगता ऐश्वर्य भोग और जीवन इन दोनोंको अन्य भी प्राणी कर्मानुसार पाते ही हैं अर्थात् जिसपर आप जैसे सर्वाध्यक्ष देवताकी कृपादृष्टि है वह अपने निर्वाहानुकूल ऐश्वर्य अवश्य पावेगा । मेरे ऊपर तो आपकी विशेष कृपा है उसका फल साधारण धनादि मांगना अनुचित है इस कारण (मे) मुझको (वरस्तु) वर तो (स एव) वही (वरणीयः) मांगना है जो पहिले मांगचुका हूं अन्य नहीं ॥ २७ ॥

अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् । अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८॥

अ०-(वर्णरतिप्रमोदान्) वर्णस्य गौरसौन्दर्यादिरतेः प्रमदासम्बन्धस्य प्रमोदान् हर्षान् (अभिध्यायन्) तत्त्वतो दुःखमूलान् विचारयन् (अजीर्यताम्) वयोहानिमप्राप्नुवताम् (अमृतानाम्) मुक्तानां योग्यताम् (उपेत्य) प्राप्य (क्वधःस्थः) कौ पृथिव्यामधो निकृष्टदशायां परमार्थसुखापेक्षया तिष्ठतीति सः (जीर्यन्) शरीरादेः क्षीणतामनुभवन् (कः) (प्रजानन्) प्रज्ञावान् सदसद्विवेकी जनः (अतिदीर्घे) (जीविते) जीवने (रमेत) न कोऽपीत्यर्थः । क्वधःस्थ इत्यस्य क्वतदास्थइति पाठान्तरे तेषु पुत्रधनादिष्वास्था यस्य स तादृशः क्व भवति न क्वापीत्यर्थः॥

भा०—यथा बुद्धिमतः कस्यचिदुत्तमाधिकारसुखमुपस्थितं नैव स उत्कृष्टं विहाय निकृष्टमाप्तुं मनो धत्ते तथैव यः परमार्थमात्मज्ञानजन्यमनुत्तमं सुखमाप्तुमुत्सुकः शक्तश्च महदाश्रयेणोपस्थिते च सुखेऽनेकविघ्नोपद्रुतं दुःखबहुलमनित्यं सुखभोगं को विद्वान् प्रार्थयेत्? अतो नाहं प्रलोभ्यः संसारसुखैरिति नचिकेतस आशयः ॥ २८ ॥

भाषार्थः—(वर्णरतिप्रमोदान्) गोरे सुन्दर आदि वर्ण और सुन्दर स्त्री के सम्बन्धसे हुए काम सुखोंको (अभिध्यायन्) तत्त्व से दुःख के मूल समझते हुए तथा (अजीर्यताम्)

जीर्ण वृद्धावस्था रहित (अमृतानाम्) मुक्त पुरुषोंकी योग्यताको (उपेत्य) पाकर (क्वधःस्थः) परमार्थ सुख की अपेक्षा पृथिवी पर निकृष्ट दशा में स्थित (जीर्यन्) शरीर इन्द्रियोंके नाश का अनुभव करता हुआ (कः) कौन (प्रजानन्) विचारशील सत् असत्का विवेकी मनुष्य (अतिदीर्घे) बहुत (जीविते) जीवनमें (रमेत) रमे अर्थात् कोई नहीं (क्वधःस्थः) इसके बदले किसी २ पुस्तक में (क्वतदास्थः) ऐसा भी पाठ मिलता है तब यह अर्थ होगा कि उन पुत्रादि अनित्य पदार्थों में कौन विरदे ? अर्थात् कोई नहीं ॥

भा०—जैसे उत्तम अधिकार का सुखभोग उपस्थित हो तो कोई बुद्धिमान् उसको छोड़कर नीचे अधिकार को नहीं पकड़ता वैसे ही जो आत्मज्ञानसे होने वाले सर्वोत्तम परमार्थ सुखकी प्राप्तिका अभिलाषी और समर्थ है और ज्ञानी महात्मा वा आप जैसे देवके आश्रयसे परमार्थ सुख मिलना उपस्थित भी है तो अनेक विघ्नों से युक्त दुःखप्राय संसारी अनित्य सुख भोग को कौन विद्वान् चाहेगा ? इस लिये मैं संसारी सुख भोगोंसे लुभाने योग्य नहीं हूं यह नचिकेता का आशय है ॥ २८ ॥

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो ! यत्सांपराये महति ब्रूहि नस्तत् । योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यन्तस्मान्नाचिकेता वृणीते ॥ २९ ॥

अ०—हे मृत्यो यमराज ! (यस्मिन्) आत्मज्ञानविषये (इदम्) अस्ति नास्ति वाऽस्ति चेत्कीदृशं क्वास्ति वेत्यादिप्रकारेण (विचिकि-

-तसन्ति) संदेहान्कुर्वन्ति (यत्) (महति) अ-नन्ते (साम्पराये) मोक्षदशायां विचारोऽस्ति (तत्) विवेचनम् (नः) अस्मभ्यम् (ब्रूहि) उपदिश (यः, अयम्) प्रसंगप्राप्तः (गूढम्) गूढत्वं गोपनमनिर्वाच्यत्वम् (अनुप्रविष्टः) आ-त्मज्ञानानुकूलः (वरः) याच्यमस्ति (तस्मात्) (अन्यम्) वरम् (नचिकेताः) (न) (वृणीते) नहीच्छति तमेवेच्छामीत्यर्थः ॥

भा०—हे ब्रह्मनिष्ठयमदेव ! मरणकाले कश्चि-दात्मावशिष्यते न वा जन्मान्तरं कश्चिदाप्नो-ति न वा कः कथं कदा वा विमुक्तो भवतीति ज्ञानं वरो देयइत्यर्थः ॥ २९ ॥

इति कठोपनिषदि प्रथमा वल्ली समाप्ता ॥

भाषार्थः—हे (मृत्यो) यमदेव ! (यस्मिन्) जिस आ-त्मज्ञान विषयमें (इदम्) आत्मा कोई है वा नहीं है, है तो कहां है वा कैसा है इत्यादि प्रकारसे (विचिकित्सन्ति) लोग सन्देह करते हैं (यत्) जो (महति) अनन्त (साम्पराये) मोक्षदशामें विचार वा ज्ञान है (तत्) उस विवेक को (नः) हमारे लिये (ब्रूहि) कहिये (यः) जो (अयम्) यह प्रसंगसे प्राप्त अर्थात् जिसका विचार चल रहा है (गूढम्) छिपाहुआ वा अकथनीय दशा को (अनुप्रविष्टः) पहुंचा (वरः) वर है (तस्मात्) उससे (अन्यम्) भिन्न वरको (नचिकेताः) न-चिकेता (न,वृणीते) नहीं चाहता अर्थात् उसी वरकी इच्छा मैं करता हूं ॥

भा०--हे ब्रह्मनिष्ठ यमदेव ! मरण समय कोई आत्मा शेष रह जाता है वा नहीं जिसका जन्म मरण हो ही नहीं तथा जन्मान्तर को कोई धारण करता है वा नहीं, कौन किस प्रकार वा कब मुक्त होता है, इस प्रकारका ज्ञानरूप वर मुझ को दीजिये ॥ २९ ॥

यह प्रथमा वल्ली समाप्त हुई ॥

अथ द्वितीया वल्ली ॥

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः । तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद् य उ प्रेयो वृणीत ॥ १ ॥

अ०--बहुप्रकारं यमेन लोभ्यमानोऽपि नचिकेता यदा न लुलुभे तदा शिष्ययोग्यतां बुद्ध्वा शिष्यप्रशंसापूर्वकं ज्ञानमुपदेष्टुमाह--(श्रेयः) अतिशयितं प्रशस्यं कल्याणकरं मोक्षप्राप्तिसाधनं कर्म (अन्यत्) यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् । संसारिकृत्यापेक्षयातिविलक्षणमरोचकं नीरसम् । (उत) (प्रेयः) अत्यन्तं प्रियं स्त्रीधनैश्वर्यादिभोगप्रापणम् (अन्यत्, एव) प्रारम्भे सुखवद् परिणामेऽपरिमितदुःखहेतुकमहोरात्रवद्भिन्नम् (ते) श्रेयःप्रे-

एते (उभे) (नानार्थे) नानाविधा अर्थाः प्रयोजनानि ययोस्ते भिन्ननिमित्ते भिन्नफलके सती (पुरुषम्) (सिनीतः) कर्मफलानुमोदनवासनारज्जुभिर्बध्नीतः (तयोः) श्रेयःप्रेयसोर्मध्ये (श्रेयः) (आददानस्य) उपादातुः (साधु) कल्याणम् (भवति) (यः, उ) (प्रेयः) (वृणीते) स्वीकरोति सः (अर्थात्) नित्यसुखप्राप्तिरूपात्परमार्थप्रयोजनात् (हीयते) हीनो भवति ॥

भा०—यथानिम्बादिकटुवस्तूनि प्रायोऽप्रियाणि भवन्ति परिणामे च तेषामौषधत्वान्महत्सुखम् । शर्करादिमिष्टं प्रायः प्रियं तत्सेवने प्रायः कल्याणं न जायते तथैव पारमार्थिकसुखसम्पत्तु तपश्चरणादि श्रेयो विषकुम्भपयोमुखवत्संसारि विषयभोगप्रेयसोऽतिदूरतरम् । तत्र यो मनुष्यजन्म प्राप्य मुक्तये प्रयतते स कल्याणमाप्नोति नेतरः शकृत्कृमिर्भोगासक्तः ॥ १ ॥

भा०—यमराजने बहुत कुछ लुभाया भी नचिकेता जब लोभित न हुआ तब शिष्यकी योग्यता जानकर शिष्यकी प्रशंसापूर्वक ज्ञानका उपदेश करनेका प्रारम्भ किया—(श्रेयः) अत्यन्त प्रशंसित कल्याणकारी मोक्षप्राप्ति का साधन रूप कर्म (अन्यत्) अन्य है अर्थात् संसारि कृत्यकी अपेक्षा अति विलक्षण अरोचक नीरस और (प्रेयः) स्त्रीधनैश्वर्यादि भोग मिलना अत्यन्त प्रिय (अन्यत्, एव) प्रारम्भ में नाममात्र

थोड़ा सुख देने और परिणाममें अतुल दुःखदायी दिनरात के तुल्य भिन्न ही है (ते) वे कल्याण अकल्याण (उभे) दोनों (नानार्थे) भिन्न २ प्रयोजन वाले हुए (पुरुषम्) मनुष्यको (सिनीतः) कर्मफलके अनुमोदनकी वासना रूप रस्सियोंसे बांधते हैं अर्थात् परमार्थी मनुष्य भी संसार के बन्धनोंसे छूटने रूप प्रयोजन में बद्ध रहता है (तयोः) उन दोनोंमें से (श्रेयः) श्रेयको (आददानस्य) ग्रहण करनेवाले का (साधु) अच्छा भला (भवति) होता (यः, उ) और जो (प्रेयः) प्रेय को (वृणीते) चाहता है वह (अर्थात्) नित्य सुख प्राप्ति रूप परमार्थ प्रयोजनसे (हीयते) भ्रष्ट हो जाता है ॥

भा०-- जैसे नींब आदि कडुई वस्तु प्रायः प्रिय नहीं लगती और अन्तमें उनके सेवनसे अनेक रोगों का नाश होकर बड़ा सुख होता है । शक्कर आदि मीठा प्रायः प्रिय होता उसके सेवनमें कल्याण होना कम सम्भव है । वैसे ही परमार्थ सुखका साधक तपश्चरण आदि, संसारी विषय भोग (भीतर विष ऊपर दूधसे भरे घड़ेके तुल्य) से अत्यन्त विलक्षण है । उसमें जो मनुष्य जन्म पाकर मुक्ति होने के लिये प्रयत्न करता है वह कल्याणको प्राप्त होता उससे भिन्न भोगमें आसक्त विष्ठा कीड़ाके तुल्य मनुष्य सद्गतिको नहीं पासक्ता ॥ १ ॥

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः । श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते ॥२॥

अ०-(मनुष्यम्) (श्रेयः, च) (प्रेयः,च) पूर्वोक्तेउभे अपि (एतः) प्राप्नुतः । संसारान्तर्गतत्वाद्द्वयमपि सर्वस्य समीप उपस्थितं भ-

वति तत्र साधारणो जनो नावधारयितुं शक्तः किं श्रेयः प्रेयो वास्तीति किन्तु (तौ) विपर्य्यौ (सम्परीत्य) प्राप्य संस्कृतया मनीषयाऽऽलोच्य (धीरः) विद्वान् (विविनक्ति) तयोस्तारतम्यं कल्याणाकल्याणकरत्वं विवेचयति । (धीरः) (प्रेयसः) प्रियतमाच्छ्रेष्ठम् (श्रेयः, हि) श्रेयएव (अभिवृणीते) उभयतः स्वीकरोति (मन्दः) मन्दमतिः (योगक्षेमात्) रक्षासुखे आश्रित्य (प्रेयः) विषयभोगम् (वृणीते) याचतेऽभिलषति । विषयभोगमेव प्रार्थयति ॥

भा०—संसारे कल्याणहेतुकमकल्याणहेतुकं चोभयं वर्त्तते केचिद्विषयाः कल्याणाभासा मन्दमतिभिः कल्याणत्वेनोरीक्रियन्ते तदर्थं मनुष्येण विदुषा भवितव्यम् । येन सदसद्विवेकः सुलभः स्यात् । विद्वान् हि कल्याणभाग्भवितुमर्हति नेतरो मूढः । त्वया नचिकेतसा च श्रेय एव वृतमतस्त्वं विवेकी । धीरस्त्वं विद्वस्त्वं चैतदेव यच्छ्रेयोवरणमन्ये चाविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितंमन्यमानाः प्रेयसो वरणान्मन्दाएवेति निश्चेतव्यम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(मनुष्यम्) मनुष्यको (श्रेयः) कल्याण (च) और (प्रेयः) रोचक प्रिय अकल्याण मार्ग (च) भी उक्त दोनों (एतः) प्राप्त होते अर्थात् संसारके अन्तर्गत होनेसे दोनों

सबके निकट उपस्थित होते हैं उसमें साधारण मनुष्य निश्चय नहीं कर सकता कि इस में कल्याण का मार्ग यही है किन्तु अविद्याके प्रतापसे अकल्याणको कल्याण मानकर चलते हैं । (धीरः) विद्वान् पुरुष (तौ) उन अच्छे बुरे दोनों विषयों को (सम्परीत्य) शास्त्रसे शुद्ध हुई बुद्धिसे निश्चय कर (विविनक्ति) विवेक करता है और (धीरः) विद्वान् ही (प्रेयसः) अतिप्रिय रोचक विषयसे श्रेष्ठ (श्रेयः) (हि) कल्याणको ही (अभि,वृणीते) चाहता है तथा (मन्दः) मन्दबुद्धि मनुष्य (योगक्षेमात्) अपनी भय आदिसे रक्षा और सुखका आश्रय कर (प्रेयः) प्रियतर विषय भोगको ही (वृणीते) मांगता है ॥

भा०—संसारमें कल्याण अकल्याण दोनोंके साधन वर्त्तमान हैं कोई विषय ऊपरसे देखनेमें कल्याणकारी होते किन्तु वास्तवमें नहीं उनको मन्द बुद्धि लोग कल्याणका हेतु समझके स्वीकार करते हैं । इसलिये मनुष्यको विद्वान् होना चाहिये जिस से सत् असत्का विवेक सुगम होजावे । विद्वान् पुरुष कल्याण का भागी हो सकता है किन्तु मूर्ख नहीं । और हे नचिकेता तूने ठीक कल्याण को जानकर मांगा इस कारण तू विवेकी और अधिकारी है, धीर वा विद्वान् होने का लक्षण यही है कि जो श्रेयरूप परमार्थका आरम्भ करना स्वीकार करे । अन्य लोग बड़े पण्डित कहाते हुए भी प्रेयके स्वीकारसे अविद्याग्रस्त पण्डितंमन्य मन्दमति मूर्ख माने जाते हैं ॥ २ ॥

स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामानभि-
ध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः । नैतां सृङ्कां
वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो
मनुष्याः ॥ ३ ॥

अ०—इदानीं नचिकेतसमभिमुखीकृत्य यमआह—हे (नचिकेतः) (सः, त्वम्) मया बहुविधं प्रलोभ्यमानोऽपि (प्रियान्) पुत्रपौत्रादीन् (प्रियरूपान्) अप्सरःप्रभृतीन् (कामान्) कामभोगाननित्यत्वासारत्वदुःखबहुलत्वादि दोषदुष्टान् (अभिध्यायन्) सर्वतश्चिन्तयन् (अत्यस्राक्षीः) त्यक्तवान् त्वम् (एताम्) (वित्तमयीम्) भोगैश्वर्यरूपां लोहमयीमिव (सृङ्काम्) शृङ्खलाम् (न, अवाप्तः) (यस्याम्) (बहवः) (मनुष्याः) (मज्जन्ति) बद्धा भवन्ति तामेतां नावाप्त इति पूर्वेणान्वयः ॥

भा०—अहो ! नचिकेतस्तव बुद्धिवैभवमपूर्वमद्भुतं त्वादृशएव वेदान्तज्ञानाधिकारी भवति योऽखिलभूगोलराज्यमपि प्राप्तं तृणीकृत्य संसारान्निर्विण्णः परमार्थसाधने प्रयतेत ॥ ३ ॥

भाषार्थः—अब नचिकेता की ओर साक्षात् तत्पर होके यमराज कहते हैं कि हे (नचिकेतः) नचिकेता (सः, त्वम्) मैंने बहुत प्रकारसे लुभाये हुए भी तूने (प्रियान्) पुत्र पौत्र आदि (प्रियरूपान्) अप्सरा अतिसुन्दर स्त्री आदि (कामान्) अनित्य असार और अधिक दुःख होना रूप दोषों से युक्त कामभोगों को (अभिध्यायन्) सब ओरसे विचार कर (अत्यस्राक्षीः) छोड़दिया । और तू (एताम्) इस भोग ऐश्वर्य रूप लोह की सी (सृङ्काम्) साँकरको (न) (अवाप्तः) नहीं प्राप्त हुआ अर्थात् उसमें नहीं फंसा कि (यस्याम्) जिस

में (बहवः) बहुत (मनुष्याः) मनुष्य (मज्जन्ति) बंधे र-
हते हैं उसमें तू न फंसा किन्तु विचार पूर्वक निकल गया ॥

भा०—अहो ! नचिकेता तेरी बुद्धि के अपूर्व अद्भुत प्र-
ताप को धन्य है तेरा जैसा ही पुरुष वेदान्त ज्ञानका अधि-
कारी होता है जो समस्त पृथिवी के राज्य की प्राप्तिको भी
तृणमात्र समझ कर संसार से उदासीन हो परमार्थ साधन में
प्रयत्न करे ॥ ३ ॥

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च
विद्येति ज्ञाता। विद्याभीप्सिनन्नचिकेतसं
मन्ये न त्वा कामा बहवो लोलुपन्त ॥४॥

अ०—(एते) श्रेयःप्रेयोविषये (विषूची) विलक्षणगती विरुद्धार्थसूचिके वा (विपरीते) परस्परं विरुद्धे दूरं महदन्तरेण वर्त्तेते ते के इत्याकाङ्क्षायामाह (अविद्या) प्रेयोलक्षणा (या, च) (विद्या) श्रेयोलक्षणा (इति) एवंप्रकारेण (ज्ञाता) विद्वद्भिरिति शेषः । अहं (विद्याभीप्सिनम्) अतस्मिंस्तद्बुद्धिवर्जितां यथार्थज्ञानलक्षणां विद्यामभीप्सयितुं शीलमस्य तादृशम् (नचिकेतसम्) त्वाम् (मन्ये) जाने । यतः कारणात् (त्वा) त्वाम् (बहवः) (कामाः) सुखभोगाभिलाषाः (न) (लोलुपन्त) न लोभयन्ति न विषयजाले बध्नन्ति ॥

भा०—तयोः श्रेयआददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्यउप्रेयो वृणीते इति यदुक्तं तस्य हेतु

द्वयोर्दूरत्वं दृश्यते विद्याऽविद्ययोर्गतौ महान् भेदः तमःप्रकाशवत्तयोर्विरोधात् । सर्वबाधाविमुक्तिज्ञानं विद्या संसारस्थसुखभोगानुभवज्ञानमविद्या संसारस्थसुखभोगेषु वितृष्णएव जनो विद्यामभीप्सति त्वया च नचिकेतसाऽविद्यासंबद्धं प्रेयो न कृतमपितु श्रेयो कृतमतस्तव साधु सफलं जन्मेति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(एते) उक्त दोनों अच्छ बुरे विषय वालीं (विषूची) परस्पर विरुद्ध प्रयोजन की सूचक (विपरीते) एक दूसरी से विलक्षण रात दिनके समान विरुद्ध (दूरम्) दोनों दूर २ नाम पृथक् २ हैं (अविद्या) संसारी विषयभोग रूप (च) और (या) जो (विद्या) कल्याण रूप (इति) इस प्रकार विद्वानों ने (ज्ञाता) निश्चय की है । मैं (नचिकेतसम्) नचिकेता को (विद्याभीप्सिनम्) अन्यमें अन्य बुद्धि होना रूप मिथ्याज्ञान को छोड़ के यथार्थ ज्ञान रूप विद्याका चाहने वाला (मन्ये) मानता हूं । जिस कारण (त्वा) तुझ को (बहवः कामाः) सुख भोग की अभिलाषा (न, लोलुपन्त) लोभित नहीं करते विषयजाल में नहीं बांधते ॥

भा०—पहिले कह चुके हैं कि (तयोः) उन श्रेय प्रेय दोनोंमें से श्रेयको स्वीकरने वाले का भला होता और प्रेयका स्वीकर्त्ता इष्ट सुख से हीन हो जाता है इसका हेतु यही है कि इन श्रेय प्रेय दोनोंमें बड़ा भेद है सो यहां दिखाते हैं कि विद्या अविद्या की गति में बड़ा भेद है प्रकाश अन्धकार के तुल्य उनका विरोध है । सब बाधाओंसे छूटनेका ज्ञान होना विद्या और संसारके सुख भोगके अनुभव का ज्ञान अविद्या कहाती है । संसारस्थ सुखभोगों में तृष्णा रहित ही मनुष्य विद्या को चाहता है और तुम नचिकेताने अविद्या संबन्धी

प्रेय को स्वीकार नहीं किया किन्तु श्रेय का ही स्वीकार किया इस से तुम्हारा जन्म सफल है ॥ ४ ॥

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयन्धीराः प-
ण्डितम्मन्यमानाः । दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति
मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥५॥

अ०—विद्याभीप्सिनः पुरुषाद्भिन्नाः कीदृशा जना भवन्ति तदुच्यते (अविद्यायाम्) (अन्तरे) मध्ये महत्यज्ञानान्धकारे (वर्त्तमानाः) (स्वयन्धीराः) वयं पण्डिताः शास्त्रज्ञा इत्यात्मानम् (पण्डितम्) (मन्यमानाः) (दन्द्रम्यमाणाः) कुटिलपथगामिनो भृशमितस्ततो धावन्तो वा (मूढाः) विक्षिप्ता अस्थिरचेतसो मोहं प्राप्ताः (अन्धेनएव) अन्धोपहतचक्षुषैव (नीयमानाः) (यथा) (अन्धाः) गच्छन्ति तथा (परियन्ति) परितो गच्छन्ति ॥

भा०—यथा नौर्नावि बद्धा नेतरत्राणाय भवति तथाऽन्धद्वयमपीतरेतराश्रितमधोगतिं लभते नैव तयोरन्यतरस्त्राता भवितुमर्हति। यथा च पङ्कोपदिग्धौ हस्तौ पङ्केनैव न शुध्यतस्तथैव यः स्वयं संसारार्णवैकदेशविषयपङ्के निमग्नः स नान्यं पङ्कादुद्धर्त्तुं शक्तोऽपितु द्वावपि निमज्जतः। अज्ञानान्धतमसि पुत्रपश्वादितृष्णापाशशतैर्वेष्टयमाना वयं प्रज्ञावन्तः शास्त्रकुशलाः सुखभोग-

साधनधनादिलब्धये धावमानाः कुटिलगतिं गच्छन्तो विषमे पथ्यन्धेनान्धइव नीयमाना जरामरणरोगादिदुःखैरावृताः परियन्ति ॥ ५ ॥

भाषार्थः— विद्याभिलाषी पुरुषसे भिन्न मनुष्य कैसे होते हैं सो कहते हैं—(अविद्यायाम्) अन्यको अन्य समझना रूप विपरीत ज्ञान स्वरूप अविद्याके (अन्तरे) बीच बड़े अज्ञानान्धकारमें (वर्तमानाः) वर्तमान (स्वयन्धीराः) हम शास्त्रज्ञ विचारशील हैं इस प्रकार अपनेको (पण्डितम्) पण्डित (मन्यमानाः) मानते हुए (दन्द्रम्यमाणाः) उलटे मार्गमें चलने वाले वा इधर उधर शीघ्र २ भागते हुए (मूढाः) विक्षिप्त चंचल चित्त मोहमें फंसे (अन्धेन, एव) जिसके नेत्र नष्ट होगये उसके साथ ही अज्ञानसे (नीयमानाः) चलनेवाले (यथा) जैसे (अन्धाः) नेत्र हीन अन्धे चलते हैं वैसे (परियन्ति) सब ओरसे चलते हैं ॥

भा०—जैसे नौका नौकामें बांध देनेसे एक दूसरेको पार नहीं पहुंचा सकती वैसे दो अन्धे भी एक दूसरेके आश्रय होकर गढ्ढेमें गिरते हैं उनमें एक दूसरेकी रक्षा नहीं कर सकता और जैसे कीच में सने हुये हाथ कीच से ही शुद्ध नहीं होते वैसे जो स्वयं संसार सागरके किसी विषय रूप कीच में फंसा है वह दूसरेको कीच रूप अविद्यासे नहीं उबार सकता किन्तु वे दोनों डूबते हैं इस लिये उनका उद्धार करने वाला तीसरा पूर्ण ज्ञानी मल्लाह होना चाहिये । अज्ञानान्धकारमें पुत्र पश्वादिकी तृष्णा सम्बन्धी सैकड़ों फांसोंसे बंधे हुये हम बुद्धिमान् पण्डित हैं ऐसे अभिमानमें भरे, सुखभोग के साधन धनादि प्राप्तिके लिये भागते टेढ़े चलते हुये कुमार्गमें अन्धेके पीछे अन्धेके तुल्य चलने वाले जन्म मरणादि दुःखोंसे घिरे हुये सब ओर भाग रहे हैं ॥५॥

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् । अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥६॥

अ०—(वित्तमोहेन) पुत्रपशुधनैश्वर्यादिप्रयोजनवस्तुष्वासक्तमनस्त्वेन तद्वियोगशोकग्रस्ताविवेकेन (मूढम्) तमसावृतम् (प्रमाद्यन्तम्) कल्याणाचरणे प्रमादं कुर्वन्तम् (बालम्) विवेकरहितं पुरुषम् (साम्परायः) परमार्थसाधनविशेषोऽपरिग्रहेश्वरप्रणिधानतपश्चरणादिः (न प्रतिभाति) स्मृतिस्थो न भवति (अयम्) (लोकः) प्रत्यक्षतया दृश्यमानः स्त्र्यन्नपानैश्वर्यादिरस्ति । इतः (परः) अन्यः कश्चित्परमार्थः (नास्ति) (इति) (मानी) मननशीलो जन्मान्तरीयपुण्यपापफलभोगेष्वविश्वासेन पापासक्तत्वात् (मे) मम न्यायाधीशस्य यमराजस्य दण्डमाप्तुम् (वशम्) शरणम् (पुनःपुनः) (आपद्यते) प्राप्नोति ॥

भा०—भोगासक्तोऽविवेकी परमार्थं नैव स्मरति । धर्माधर्मौ च न विवेचयति सुखभोगानुकूलमधर्ममप्याचरति तेन न्यायाधीशयमराजन्यायालये पुनःपुनर्दण्डभाग्भवति ॥ ६ ॥

भा०—(वित्तमोहेन) हा ! मेरे पुत्र पशु धन ऐश्वर्यादि छूट जायं-

गे ? प्रयोजनीय पदार्थोंमें मनके आसक्त होनेसे उन पुत्र धनादिके शोकमें ग्रस्त हुआ कि शरीर छूटते समय सब यहीं रहजायगा वा जीवन समयमें चोर आदि ले जावेंगे तो क्या करूंगा इत्यादि अविवेक रूप (मूढम्) अन्धकारसे जिसका आत्मा ढपा है उस (प्रमाद्यन्तम्) कल्याणमार्गसे प्रमाद करते हुए (बालम्) विवेक रहित अज्ञानी पुरुषको (साम्परायः) अपरिग्रह-लौकिक सुखभोग से उदासीनता ओंकार का जप ईश्वरका पूजन ध्यान प्रार्थना उपासना और द्वन्द्वसहनरूप तप करना आदि परमार्थका साधन (न, प्रतिभाति) अच्छा नहीं लगता वा उसका स्मरण नहीं होता (अयम्) प्रत्यक्ष (लोकः) दीखता हुआ स्त्री अन्न पान ऐश्वर्य आदिका भोग रूप यही लोक है । इससे (परः) अन्य कोई परमार्थ (नास्ति) नहीं है वह अज्ञानी (इति) ऐसा (मानी) मानने वाला होता है क्योंकि जन्मान्तरमें होने वाले पुण्य पापके फल भोगमें अविश्वास होनेसे पाप करनेमें फंसता है । और (मे) दण्ड पाने के लिये मुझ यमराज न्यायाधीशके (वशम्) शरणको (पुनःपुनः) बार २ (आपद्यते) प्राप्त होता है ॥

भा०—भोगमें फंसा हुआ अज्ञानी परमार्थका स्मरण नहीं करता तथा धर्म अधर्म का भी विवेक नहीं करता सुख भोग के आश्रयसे अधर्म भी करता है । इससे न्यायाधीश यमराज के इजलास नाम न्यायस्थानमें बार २ दण्डभागी होता है ॥६॥

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः । आश्चर्योऽस्य वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥७॥

अ०—बालादितरो विवेकी श्रेयोर्थी कश्चिदेव भवतीत्याहः—यतः (बहुभिः) जनैः (यः)

परमात्मा (श्रवणाय, अपि) श्रवणार्थमपि (न,लभ्यः) सभासमाजादिषु यस्य व्याख्यान-श्रवणमपि बहवः कार्यासक्ता न लभन्ते सभादिषु गताश्च (बहवः) जनाः (शृण्वन्तः, अपि) (यत्) ब्रह्म (न,विद्युः) न जानीयुः । आश्चर्यस्वरूपत्वात्तस्य (अस्य) ब्रह्मणः (वक्ता) यथार्थगुणानां प्रतिपादकः (आश्चर्यः) अद्भुत स्वरूपोऽसंख्येषु कश्चिदेव सभासमाजादिषु श्रोतृष्वपि (अस्य) (कुशलः) प्रवीणः '(लब्धा) प्रापकः कश्चिदेव भवति । (कुशलानुशिष्टः) कुशलेन ब्रह्मज्ञाने प्रवीणेनाचार्येणानुशिष्ट उपदिष्टः (ज्ञाता) (आश्चर्यः) कश्चिदेव जायते न सर्वः ॥

भा०—मानुषे लोके ब्रह्मज्ञानी पुरुषो दुर्लभः कश्चिदेवानेकजन्मानुष्ठिततपश्चरणादिसिद्धो जायते स चाश्चर्यरूपः । ब्रह्मणउपदेष्टा च दुर्लभो महाप्रयत्नसाध्यः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—वाग्बुद्धि से भिन्न मुमुक्षु विरक्त विचारशील कोई विद्वान् होता है सो कहते हैं-जिस कारण (बहुभिः) बहुत मनुष्योंको (यः) जो परमात्मा (श्रवणाय, अपि) सुननेको भी (न,लभ्यः) नहीं मिलता अर्थात् अपने संसारी कामोंमें आसक्त बहुत लोग धर्मसभा आदिमें जिसका व्याख्यान सुनने को भी नहीं पहुंचते । धर्मसभादिमें गये (शृण्वन्तः) (अपि) सुनते हुए भी (बहवः) बहुत लोग (यत्) जिस ब्रह्मको

(न, विदुः) नहीं जानते क्योंकि वह आश्चर्य स्वरूप है (अस्य) इस ब्रह्मका (वक्ता) यथार्थ रूपसे कहने वाला (आश्चर्यः) असंख्योंमें कोई अद्भुत स्वरूप होता तथा धर्मसभादिके श्रोताओंमें भी (अस्य) इस परेशका (लब्धा) प्राप्त होने वाला कोई (कुशलः) प्रवीण होता (कुशलानुशिष्टः) ब्रह्मज्ञानमें प्रवीण आचार्यसे उपदेशको प्राप्त (ज्ञाता) ज्ञानी (आश्चर्यः) कोई ही होता है सब नहीं ॥

भा०—मनुष्य सृष्टिमें ब्रह्मज्ञानी पुरुष दुर्लभ है कोई ही अनेक जन्मोंमें किये तपआदिसे सिद्ध होता है वह आश्चर्य रूप है और ब्रह्मका उपदेश करने वाला भी दुर्लभ है बड़े भाग्य वा प्रयत्न से मिल सकता है ॥ ७ ॥

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः । अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥८॥

अ०—(अवरेण) पारमार्थिकादितरेणैहिकेन संसारिणा (नरेण) मनुष्येण (प्रोक्तः) उपदिष्टः (बहुधा) बहुप्रकारं योगिभिर्विरक्तैः (चिन्त्यमानः) विचार्यमाणः (एषः) आत्मा (न, सुविज्ञेयः) नहि सुष्ठुतया ज्ञातुं योग्यः (अत्र) अस्मिन्नात्मनि (अनन्यप्रोक्ते) परमार्थज्ञाननिष्ठेनाचार्येण प्रोक्त उपदिष्टे (गतिः) जिज्ञासोश्चाञ्चल्यम् (नास्ति) (अणुप्रमाणात्) अतिसूक्ष्मात् (अणीयान्) अतिसूक्ष्मः (हि, अतर्क्यम्) निश्चयेन तर्कितुमयोग्यः । अत्र सुप्तिङुपग्रहलिङ्गेति लिङ्गव्यत्ययः ॥ ८ ॥

भा०-योगिनो जना यमात्मानं बहुधा चिन्तयन्ति तथापि दुःखेनोपलभन्ते स संसारिणा बुद्धिमताप्युपदेष्टुमयोग्यः । किन्तु ब्रह्मज्ञानस्नातेनाचार्येण कृतो ज्ञानोपदेशो जिज्ञासोर्बुद्धिं स्थिरी करोति । अतिसूक्ष्मे ब्रह्मणि बुद्धिरभिनिविशते किन्तु तर्काश्वं नावरोहति ॥८॥

भाषार्थः– (अवरेण) परमार्थों से भिन्न संसारी (नरेण) मनुष्य से (प्रोक्तः) उपदेश किया (बहुधा) बहुत प्रकार योगी विरक्तों ने जिस का चिन्तन किया है (एषः) यह आत्मा (न, सुविज्ञेयः) सुगमता से जानने योग्य नहीं (अत्र) इस (अनन्यप्रोक्ते) परमार्थज्ञाननिष्ठ आचार्य ने उपदेश किये आत्मा में (गतिः) जिज्ञासुकी चंचलता (नास्ति) नहीं होती वह ब्रह्म (अणुप्रमाणात्) सूक्ष्म से भी (अणीयान्) अतिसूक्ष्म है और (हि, अतर्क्यम्) तर्क करने योग्य निश्चय कर नहीं है ॥

भा०-योगी जन जिस आत्मा का बहुधा चिन्तन करते हैं तो भी दुःख से प्राप्त होते हैं वह परमात्मा संसारी बुद्धिमान् से भी उपदेश करने योग्य नहीं किन्तु ब्रह्मज्ञानमें गोता लगाने वाले आचार्य ने किया ज्ञानोपदेश जिज्ञासु की बुद्धि को स्थिर करता है इसी से अति सूक्ष्म ब्रह्म में बुद्धि प्रविष्ट होती है किन्तु तर्करूप घोड़े पर नहीं चढ़ती ॥८॥

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ । यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥९॥

अ०—हे (नचिकेतः) (एषा) मया दत्ता (मतिः) बुद्धिः (न) (आ, अपनेया) ईषदपि (तर्केण) नो त्याज्या न विनाश्या वा । हे (प्रेष्ठ) प्रियतम (अन्येन, एव) तार्किकाद्भिन्नेनैव वेदविदाऽऽचार्येण (प्रोक्ता) उपदिष्टा मतिः (सुज्ञानाय) भवति (सत्यधृतिः) सत्या धृतिर्यस्य स निश्चलधैर्यः (त्वम्) (याम्) मतिम् (आपः) प्राप्तवान् (असि) (वत) अनुकम्पित आचार्यआह (नः) अस्मान् (प्रष्टा) (त्वादृक्) त्वत्सदृशोऽन्यः शिष्योऽपि (भूयात) इत्याशास्महे ॥

भावार्थः—लौकिकविषयनिर्णये तर्कः साधनं भवति किन्त्वात्मादिसूक्ष्मेऽतीन्द्रिये ब्रह्मनिष्ठाचार्येणैवोपदेश्ये वेदैकवेद्ये विषये नहि तर्कैः कृतकारी भवति। सर्वोपद्रवाणां शान्तिः सर्वसन्देहानां समाधानं ब्रह्मज्ञानस्यादिमं लक्ष्म यदि तत्र तर्कः प्रविशेत्तर्हि शान्तिभङ्गश्चाकुल्यं च सम्भवति ब्रह्मविषयिणी सात्विकी मतिस्तर्केण नश्यति । आत्मज्ञानस-

म्वन्धेप्यनात्मवादिनस्तर्ककण्टकेन निवारणीयाः। यथा कण्टकेनाङ्कुरो रक्ष्यते पश्वादयो भक्षका निवार्यन्ते तथैवेहापि योज्यम् ॥९॥

भाषार्थः—हे (नचिकेतः) नचिकेता तुमको (एषा) यह मैं ने दी (मतिः) बुद्धि (तर्केण) तर्क से कुछ भी (न, आ, अपनेया) न त्यागनी वा न बिगाड़नी चाहिये। हे (प्रेष्ठ) अत्यन्त प्रिय शिष्य (अन्येन, एव) कुतर्की से भिन्न वेदवेत्ता आचार्य ने (प्रोक्ता) उपदेश की बुद्धि (सुज्ञानाय) उत्तम ज्ञान की उपयोगिनी होती है (सत्यधृतिः) निश्चल सत्य धैर्य वाले (त्वम्) तुम (याम्) जिस बुद्धि को (आपः) प्राप्त हुए हो (बत) कृपासे पूर्ण हो पुनः आचार्य बोले कि (नः) हमको (प्रष्टा) पूछने वाला (त्वादृक्) तुम्हारे समान अन्य भी कोई शिष्य (भूयात्) हो यह आशा करते हैं ॥

भा०—लौकिक अनेक विषयों के निश्चय करने में तर्क साधन हो सकता है किन्तु ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से ही उपदेश होने और केवल वेदसे जानने योग्य आत्मादि सूक्ष्म अतीन्द्रिय (इन्द्रियोंसे न जानने योग्य) विषय में तर्क से कुछ निश्चय नहीं होता। सब उपद्रवों की शान्ति सब शंकाओं का समाधान होना ब्रह्मज्ञान का पहिला चिन्ह है यदि वहां तर्क का प्रवेश हो तो शान्ति और निश्चयमें खलबल पड़ना सम्भव है अर्थात् ब्रह्मज्ञान को विषय करने वाली सत्वगुणरूप बुद्धि तर्क से नष्ट हो जाती है परन्तु आत्मज्ञान विषय में भी अनात्मवादी जन तर्क रूप कांटे से निवारण किये जाते हैं यह तर्क का उपयोग है। जैसे भक्षक पशु आदि को रोक कर आम आदि के पौदों की कांटों से रक्षा की जाती है वैसे ही यहां भी जानो ॥९॥

जानाम्यहꣳ शेवधिरित्यनित्यं नह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवन्तत्। ततो मया

नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥ १० ॥

अ०–यमआह (शेवधिः) धनैश्वर्यम् (अनित्यम्) (इति) (अहम्) (जानामि) (अध्रुवैः) अस्थिरैरनित्यैर्धनादिभिः (हि) निश्चयेन (तत्) (ध्रुवम्) अचलं नित्यं ब्रह्म (नहि) (प्राप्यते) मनुष्येणेतिशेषः । कर्मफलवासनारहितेन (मया) (नाचिकेतः) यस्य विधानमिदानीं तुभ्यमुपदिष्टं सः (अग्निः) (चितः) तदग्न्युपलक्षितो यज्ञो विहितः (ततः) सततं वैदिकाग्निहोत्रादिकर्मानुष्ठानात् (अनित्यैः) शरीरेन्द्रियघृतादिभिः (द्रव्यैः) साधनभूतैरनुष्ठितेन कर्मणा शुद्धान्तःकरणः सन् (नित्यम्) मानुषराज्याद्यपेक्षया बहुकालस्थायित्वान्नित्यं स्वाधिकारं स्वर्गाख्यं याम्यं स्थानम् (प्राप्तवान्) (अस्मि) ॥

भा०–ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना । भगवद्गीतासु यद्यप्यनित्यैः शरीरे-

Nachiketa's sacrifice [illegible] the Yama [illegible], [illegible] fifth [illegible] all such [illegible], so Nachiketa [illegible] prior to Yama. Some [illegible] in the words of Nach[illegible] [illegible] the second half [illegible] "[illegible] Nachi[illegible]

न्द्रियघृतादिभिरात्मप्राप्तिर्दुर्लभा तथापि फलमनाश्रित्य श्रद्धया क्रियमाणं ब्रह्मार्पितं वैदिकं कर्मान्तःकरणशोधनद्वारा परम्परया ब्रह्मज्ञानहेतुकं सम्पद्यतेऽतः कर्मापि कर्त्तव्यमेव सापेक्षं नित्यं चिरस्थायि स्वर्गादिकं तु कर्म्मणा प्राप्यतएव ॥ १० ॥

भाषार्थः—यमराज फिर बोले कि (शेवधिः) धन ऐश्वर्य (अनित्यम्) सब अनित्य है (इति) यह (अहम्) मैं (जानामि) जानता हूं (अध्रुवैः) स्थिरता रहित अनित्य धनादि वस्तुओं से (हि) निश्चय कर (तत्) वह (ध्रुवम्) अचल नित्य ब्रह्म मनुष्यको (नहि) नहीं (प्राप्यते) प्राप्त होता। कर्मफल की वासना से रहित (मया) मैंने (नाचिकेतः) जिस का विधान मैंने अभी तुम से कहा है वह (अग्निः,चितः) अर्थात् उस अग्नि सम्बन्धी यज्ञ किया (ततः) उस निरन्तर अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म के अनुष्ठान से (अनित्यैः) अनित्य शरीर इन्द्रिय और घृत आदि (द्रव्यैः) पदार्थों करके निरन्तर सिद्ध किये कर्म से शुद्धान्तःकरण हुआ (नित्यम्) मानुष राज्यादि की अपेक्षा चिरस्थायी होने से स्वर्गरूप अपने यमराज के नित्याधिकार को (प्राप्तवान्) प्राप्त हुआ (अस्मि) हूं ॥

भा०—भगवद्गीता में लिखा है कि चारों वेद का जानने वाला विद्वान् वेद में कहे बहुत हविष्य पदार्थों से वैदिक आहवनीयादि अग्नि में अग्निहोत्रादि यज्ञके फल की इच्छा छोड़ के ब्रह्म को अर्पण करता है वह ईश्वराज्ञा रूप वेदोक्त कर्म में तत्पर रहने से अन्त में ब्रह्म को ही प्राप्त हो जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है। यद्यपि अनित्य शरीर इन्द्रियादि से आत्मज्ञान होना दुर्लभ है तो भी फल को छोड़ के श्रद्धा पूर्वक ब्रह्मार्पित किया वैदिक कर्म अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा परम्परा से ब्रह्मज्ञान का कारण होता है इसीलिये कर्म

भी अवश्य करना चाहिये चिरस्थायी होने से सापेक्ष नित्य स्वर्गादि फल तो कर्म से प्राप्त होता ही है ॥ १० ॥

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोर-
नन्त्यमभयस्य पारम् । स्तोममहदुरुगायं
प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्य-
स्राक्षीः ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे (नचिकेतः) (धीरः) ध्यानशीलस्त्वम् (धृत्या) धैर्येण (दृष्ट्वा) ज्ञानचक्षुषा शुभाशुभमालोच्य विवेकं कृत्वा (कामस्य) कामभोगस्य (आप्तिम्) प्राप्तिम् (जगतः) जङ्गमस्य प्राणिमात्रस्य (प्रतिष्ठाम्) स्थितिं कामभोगात्स्त्रीपुरुषसंयोगादेव सर्वः प्राण्युत्पद्यते (क्रतोः) राजसूयाश्वमेधादियज्ञस्य (अनन्त्यम्) भूमेरन्ते भवमन्त्यं नान्त्यमनन्त्यमखण्डं भूगोलराज्यम् । किम्भूतम् (अभयस्य) निर्भयतायाः (पारम्) लेशमात्रमपि यत्र कस्यचिद्भयं नास्त्येवंभूतं चक्रवर्त्तिराज्यम् (स्तोममहत्) स्तोतुं योग्यां महत्त्वं सर्वमान्यताम् (उरुगायम्) बहुभिर्गानं स्वकीर्त्तनम् (प्रति-

ष्ठाम्) (अत्यस्राक्षीः) इत्येतत्पूर्वोक्तं सर्वमत्यन्तं त्यक्तवान् ॥

भा०—परमार्थसुखप्राप्तिहेतोर्नचिकेतसा विवेकिना प्राणिनामुत्पत्तिस्थित्योः कारणं स्त्रीसम्बन्धः साम्राज्यप्राप्त्या राजसूयादियज्ञानुष्ठानेन सर्वोपरिकीर्त्तिर्निर्भयतादिप्राप्तिरनेकैः क्रियमाणं स्तुत्यादिकं चैतत्सर्वं परिणामे दुःखमेवेत्यालोच्य त्यक्तमतो नचिकेताः सर्वतोऽधिकतरं मतिमानित्याशयः ॥ ११ ॥

भाषार्थः—हे (नचिकेतः) नचिकेता (धीरः) ध्यान शील तुम ने (कामस्य) कामदेव के स्त्री सम्बन्धी सुख भोग की (जगतः) मनुष्यादि प्राणियों की (प्रतिष्ठाम्) स्थिति का कारण (स्त्री पुरुष के संयोग से ही सब प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति होती है) रूप (आप्तिम्) प्राप्ति (अभयस्य) निर्भयता की (पारम्) परा काष्ठा जहां किंचित् भी भय नहीं ऐसे (क्रतोः) राजसूय अश्वमेध आदि यज्ञ के सम्बन्ध से प्रसिद्ध (अनन्त्यम्) अखण्ड चक्रवर्ती राज्य (स्तोममहत्) स्तुति करने योग्य महिमा (उरुगायम्) बहुत मनुष्यादि जिस कीर्त्ति का गान करते उस और (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठा प्राप्ति इत्यादि सब संसारी विषय को (धृत्या) धैर्य के साथ (दृष्ट्वा) ज्ञानरूपी नेत्रों से परिणाम में दुःखदायी देख कर सत् असत्का विवेक करके असत् को (अत्यस्राक्षीः) त्याग दिया ॥

भा०–परमार्थ सुख प्राप्ति के कारण विवेक शील नचिकेता ने प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति का कारण स्त्री का सम्बन्ध, चक्रवर्ती राज्य पाकर राजसूयादि यज्ञों के अनुष्ठान से सर्वोपरि कीर्त्ति वा

निर्भयतादि की प्राप्ति और अनेक मनुष्यों से होने वाली स्तुति आदि इस सब को परिणाम में दुःखदायी समझ के त्याग दिया इस कारण नचिकेता सर्वोपरि बुद्धिमान् था ॥ ११ ॥

तन्दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठम्पुराणम् । अध्यात्मयोगाधिगमेन देवम्मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ १२ ॥

अ०—(धीरः) ध्यानशीलेः विद्वान् (अध्यात्मयोगाधिगमेन) ज्ञानेन्द्रियाणि विषयेभ्यः सन्निरुध्यान्तःकरणे चित्तस्य स्थितेः सम्पादनमध्यात्मयोगस्तस्याधिगमेन (तम्) श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यइत्यादिना पूर्वतः प्रतिपाद्यमानम् (देवम्) द्योतनशीलमात्मानम् (मत्वा) ज्ञात्वा (हर्षशोकौ) इष्टानिष्टोपलब्धी सुखदुःखे (जहाति) त्यजति । समुद्रइव गम्भीरस्तिष्ठति । किंभूतं देवम् (दुर्दर्शम्) अतिसूक्ष्मत्वाद् दुःखेन द्रष्टुं ज्ञातुं योग्यम् (गूढम्) गुप्तमप्रसिद्धमतीन्द्रियत्वात् [अनुप्रविष्टम्] मानुषादिसर्गानन्तरं तत्र तत्र जीवात्मरूपेण प्रविष्टम् [गुहाहितम्] गुहायां बुद्धौ स्थितं तत्रोपलभ्यमानत्वात् [गह्वरेष्ठम्] गह्वरे दुर्गमे प्र-

देशे तिष्ठतीति काठिन्येनोपलभ्यमानत्वात् [पुराणम्] पुरातनं सनातनं देवमिति पूर्वेणान्वयः ॥

भा०—अदृश्यं सर्वत्र व्याप्तं ध्यानयोगेनास्मिन्नेव कलेवरे दुर्गे प्रदेशे योगिभिरुपलभ्यमानं सनातनं ज्ञानप्रकाशात्मकमात्मानं ज्ञात्वा धैर्यसम्पन्नो विद्वान् सुखदुःखे परित्यजति । सुखं लौकिकं दुःखसहयोग्येव जहाति न चात्मनि भवम् । आगमापायिनी सुखदुःखे इतरेतरं कार्यकारणभावं संपद्यमाने जहातीति भावः ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(धीरः) ध्यान करने वाला विद्वान् (अध्यात्मयोगाधिगमेन) कान आदि ज्ञानेन्द्रियों को शब्द-आदि विषयों से रोक कर अन्तःकरण में चित्त को स्थिर करने रूप अध्यात्मयोग की प्राप्ति से (तम्) उस पूर्वोक्त (दुर्दर्शम्) दुःख से जानने योग्य (गूढम्) इन्द्रियों से न जानने योग्य होने से गुप्त (अनुप्रविष्टम्) मनुष्यादि की सृष्टि रचकर पश्चात् उस में प्रविष्ट हुआ (गुहाहितम्) बुद्धि में स्थिर, बुद्धि में वही जाना जाता है इससे वैसा कहा (गह्वरेष्ठम्) अति कठिन [जहां बुद्धि का पहुंचना दुस्तर है ऐसी] दशा में स्थित कठिनता से जाना जाता है इससे वैसा कहा है (पुराणम्) सनातन (देवम्) ज्ञान प्रकाश शील आत्मा को जान कर (हर्षशोकौ) इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में सुखदुःखों

को (जहाति) त्यागता है अर्थात् समुद्र के तुल्य गम्भीर रहता है ॥

भा०—अदृश्य सर्वत्र व्याप्त ध्यानयोग से इसी शरीर में कठिन स्थल में योगियों से प्राप्त होने योग्य सनातन ज्ञान प्रकाश स्वरूप आत्मा को जान के धैर्य युक्त विद्वान् पुरुष सुख दुःख में व्याकुल नहीं होता। दुःख के सहयोगी लौकिक सुख को ही छोड़ता है किन्तु आत्मा में होने वाला सुख नहीं छूटता अर्थात् आपस में एक दूसरे के कार्य कारण भावको प्राप्त होने वाले नाशवान् सुख दुःखों को छोड़ देता है ॥ १२ ॥

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य । स मोदते मोदनीयꣳ हि लब्ध्वा विवृतꣳ सद्म नचिकेतसम्मन्ये ॥ १३ ॥ Beyond Right & Wrong 13+14

अ०—(मर्त्यः) मरणधर्मा प्राणी (एतत्) वक्ष्यमाणं ब्रह्म—(श्रुत्वा) आचार्योपदेशाच्छ्रोत्रेण निशम्य मनसाऽऽत्मभावेन (सम्परिगृह्य) सम्यग्विज्ञाय (धर्म्यम्) स्वधर्माद्गुणात्सर्वथा सर्वदाऽनपेतमचलं नियमेनैव जगदुत्पत्त्यादिस्वकर्मणां विधातारं परमात्मानम् (प्रवृह्य) देहेन्द्रियादिभ्यः पृथक्कृत्य एवम् (एतम्, अणुम्) सूक्ष्ममात्मानम् (आप्य) प्राप्य (सः) विद्वान् मर्त्यः (मोदनीयम्)

मोदितुं हर्षितुं योग्यं प्रसादनीयम् (लब्ध्वा) (हि) एव (मोदते) नान्यथेत्यर्थः त्वं तु ब्रह्माप्तुं योग्योऽतस्त्वाम् (नचिकेतसम्) (विवृतम्) ब्रह्मज्ञानायोन्मुखमपावृतद्वारम् (सद्म) अवसन्नं दृढस्थितिकम् (मन्ये) ॥

भा०—यो मनुष्यो यथोक्तया श्रवणमनननिदिध्यासनप्रक्रियया सर्वधर्मनियन्तारं स्वनियमादनपेतं परमात्मानं प्राप्तुं प्रयतते सएवानन्दैकसागरं तं प्राप्यैव सुखी भवति। नास्ति ततोन्यः कश्चिदानन्दमयस्तस्मात्तमेव प्राप्यानन्दमयो भवितुमर्हति । अतद्धर्माणं प्राप्य तद्धर्मा स्यादिति च न्यायविरुद्धम्। त्वं नचिकेता आनन्दमयो भवितुं योग्यः ॥१३॥

भाषार्थः—(मर्त्यः) मनुष्य (एतत्) इस [आगे जिसका वर्णन करेंगे] ब्रह्म को (श्रुत्वा) आचार्य के उपदेश से कान द्वारा सुन के मन द्वारा आत्मभाव से (सम्परिगृह्य) स्वीकार कर वा जान के (धर्म्यम्) नियम पूर्वक ही अर्थात् अपने नियम से कभी चलायमान न होकर जगत् की उत्पत्ति आदि अपने कर्मोंको करने वाले परमात्मा को (प्रवृह्य) देह और इन्द्रियादि से पृथक् मानकर इस उक्त प्रकार (एतम्, अणुम्) इस सूक्ष्म आत्माको (आप्य) प्राप्त होके (सः) वह मनुष्य (मोदनीयम्) प्रसन्न करने योग्य परमात्मा को (लब्ध्वा) प्राप्त होके (हि) ही (मोदते) आनन्दित होता है अन्यथा

नहीं । तुम ब्रह्म को प्राप्त होने योग्य हो इस से तुम (नचिकेतसम्) नचिकेता को (विवृतम्) ब्रह्मज्ञान के लिये खुला है द्वार जिसका अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति में कुछ भी रुकावट नहीं ऐसा (सद्म) दृढ़ स्थितिवाला घर (मन्ये) मानता हूं ॥

भा०—जो मनुष्य यथोक्त श्रवण मनन निदिध्यासन क्रम से सब धर्मों के नियन्ता अपने नियम से अचल परमात्माको प्राप्त होने का प्रयत्न करता है वही आनन्द के एक समुद्र को प्राप्त होके ही सुखी होता है क्योंकि उससे भिन्न अन्य कोई आनन्दमय नहीं है इस से उसी को प्राप्त होके मनुष्य आनन्दित होता है जो उस गुणवाला न हो उसको पाके वह गुण मिले यह न्याय से विरुद्ध है तू नचिकेता आनन्दित होने योग्य है ॥ १३ ॥

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् । अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥

अ०—एतद्वचः श्रुत्वा नचिकेताः पुनराह—यद्यहं योग्यः प्रसन्नश्च भवांस्तदा (यत्) (धर्मात्) इतिकर्त्तव्यतारूपाद्वैदिकादनुष्ठेयात्तत्फलात्साधनेभ्यश्च (अन्यत्र) पृथग्भूतम् (अधर्मात्) अकर्त्तव्याद्दुःखफलात् (अन्यत्र) (अस्मात्) प्रत्यक्षात् (कृताकृतात्) कृतं कार्यमकृतं कारणं तयोःसमाहारस्तस्मात्स्थूलसूक्ष्मरूपात्संसारात् (अन्यत्र)

(भूतात्) अतीतात् (च) (भव्यात्) अनागतात् (च) चद्वयेन सापेक्षवर्त्तमानात् (अन्यत्र) कालत्रयेणापरिच्छिन्नम् (पश्यसि) जानासि (तत्) सर्वेन्द्रियविषयातीतं वस्तु(वद)॥

भा०-शुभाशुभफलैर्धर्माधर्मैर्यो न निबध्यतेऽविद्यादिक्लेशैस्तद्विपाकैश्च न परामृश्यते स्थूलसूक्ष्मचराचरजगता च न लिप्यते योऽतीतानागतभावाभावः सर्वदैकरसआत्मादिक्कालाद्यनवच्छिन्नो भवता देवेन ज्ञातोऽस्ति स मह्यमप्युपदेश्यइति भावः ॥ १४ ॥

भाषार्थः—इस वचन को सुनकर नचिकेता फिर बोला कि यदि मैं योग्य हूं और आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो (यत्) जिसको (धर्मात्) ऐसा करना वा न करना चाहिये इत्यादि प्रकार के वैदिक धर्म उसके फल और साधनों से (अन्यत्र) पृथक् (अधर्मात्) दुःख फल वाले अकर्त्तव्य से (अन्यत्र) पृथक् (अस्मात्) इस (कृताकृतात्) स्थूल सूक्ष्म रूप कार्य कारण प्रत्यक्ष संसार से (अन्यत्र) पृथक् (भूतात्) भूत (भव्यात्) भविष्यत् (च,च) और इन दोनों की अपेक्षा रखने वाले वर्त्तमान इन तीनों कालकी गतियों से (अन्यत्र) तीनों कालसे अपरिच्छिन्न पृथक् (पश्यसि) देखते वा जानते हैं (तत्) उस सब इन्द्रियों के विषयसे भिन्न वस्तुको (वद) कहिये ॥

भा०—शुभ अशुभ फल वाले धर्म अधर्म से जो बन्धन में नहीं आता अविद्यादि क्लेश कर्म और उनके फलों से जिस

का संग नहीं होता स्थूल सूक्ष्म चराचर जगत्से जो लिप्त नहीं होता भूत भविष्यत् वर्त्तमान भाव से पृथक् सर्वदा एकरस दिशा और कालादि से जिसका अवच्छेद नहीं होता ऐसे आत्मा को आप देव ने जाना है उसका उपदेश मेरे लिये भी कीजिये ॥ १४ ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाᳬंसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदᳬसङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ १५ ॥

अ०—इदानीं यमराज आत्मोपदेशप्रतिज्ञानमाह (यत्) (ओम्) (इति) (पदम्) सुबन्तं ब्रह्मणोवाचकं शब्दरूपम्, पदं पदनीयं प्राप्यं वाच्यं ब्रह्म च (सर्वे) ऋगादिनाम्ना प्रसिद्धाश्चत्वारः (वेदाः) (आमनन्ति) मुहुर्मुहुः कथयन्ति वेदेषु ब्रह्मणएव विशेषतो वर्णनमस्तीत्यर्थः (सर्वाणि,तपांसि) (च) (यत्) ओमिति पदम् [वदन्ति] तपश्चरणमपि ब्रह्मप्राप्त्यर्थमिति विद्वांसआहुः [यत्] ओमिति पदम् (इच्छन्तः) विद्वांसः (ब्रह्मचर्यम्) पूर्वाश्रमनियमान् (चरन्ति) अनुतिष्ठन्ति (तत,एतत्) (पदम्) वाच्यवाचकत्वाभ्यामभिन्नम् (ते) तुभ्यं

नचिकेतसे (संग्रहेण) संक्षेपेण (ब्रवीमि) कथयामीति ॥

भा०-वेदेषु कुत्रचित्साक्षात्कुत्रचित्परम्परया च परब्रह्मणएव प्रतिपादनमस्ति ब्रह्मचर्यवानप्रस्थसंन्यासाश्रमेषु वेदाध्ययनतपश्चरणयोगाभ्यासानुष्ठानादिनियमा विद्वद्भिर्ब्रह्मप्राप्त्यर्थाएव सेव्यन्ते तस्य ब्रह्मणओमितिवाचकं प्रतीकं तादात्म्यसंबन्धेन स्वरूपं च वदन्ति। अनेनैव नाम्ना प्रतीकोपासनरीत्या योगिभिर्नित्यमुपासितव्यइत्यर्थः ॥१५॥

भावार्थः—अब यमराज आत्मज्ञान के उपदेश की प्रतिज्ञा करते हैं कि (यत्) जिस (ओम्,इति,पदम्) ओम् इस वाचक शब्द रूप सुबन्त पद वा प्राप्त होने योग्य वाच्य ब्रह्म को (सर्वे) सब (वेदाः) ऋग्वेदादि चारोंवेद (आमनन्ति) कहते अर्थात् सब वेदों में विशेष कर ब्रह्म का ही वर्णन है (सर्वाणि) सब (तपांसि) तपोनुष्ठान (च) भी (यत्) जिस ब्रह्म की प्राप्ति के लिये किये जाते हैं ऐसा (वदन्ति) विद्वान् लोग कहते हैं (यत्) जिस ओम् पद वाच्य ब्रह्म की (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए विद्वान् (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का (चरन्ति) अनुष्ठान सेवन करते हैं (तत् एतत्,पदम्) उस इस वाच्य वाचकरूप एक ओम्पद को मैं (ते) तुम नचिकेता के लिये (संग्रहेण) संक्षेप से (ब्रवीमि) कहता हूं ॥

भा०—वेदों में कहीं साक्षात् और कहीं परम्परा से एक ब्रह्म का ही प्रतिपादन है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास

आश्रमों में वेद का पढ़ना, तप करना और योगाभ्यास आदि नियमों को विद्वान् लोग ब्रह्मज्ञान होने के लिये ही सेवन करते हैं। उस ब्रह्म का ओम् यह वाचक, प्रतीक वा तादात्म्य सम्बन्ध से स्वरूप है ऐसा कहते हैं इसी नाम से प्रतीकोपासना की रीति से योगियों को नित्य उपासना करनी चाहिये ॥ १५ ॥

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ १६ ॥

अ०—(एतत्) प्रत्यक्षमोम् (हि, एव) अवधारणवाचकपदद्वयेनान्यस्य प्रतिषेधः (अक्षरम्) (ब्रह्म) अपरं सगुणं ब्रह्म (एतत्, एव, अक्षरम्) (परम्) निर्गुणं परं प्रकृष्टं सर्वोपाधिशून्यम् । तयोर्हि प्रतीकरूपम् (एतत् हि एव) (अक्षरम्) वाच्यवाचकैकरूपम् (ज्ञात्वा) (यः) पुरुषः [यत्] सांसारिकं पारमार्थिकं वा सुखम् [इच्छति] [तस्य] [तत्] सुखसद्योऽवश्यं प्राप्तं भवति ॥

भा०—परमिति कथनादपरं प्रतीयते । सगुणनिर्गुणद्वयोरप्युपासने ओमिति प्रतीकोपासनमेव सर्वविधमिष्टसाधकम् । एतदे-

वाक्षरमुपास्यं ब्रह्मेति ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तद्वैव सुलभम् ॥ १६ ॥

भापार्थः—(एतत्) प्रत्यक्ष ओम् (हि, एव) ही (अक्षरम्) [यहां हि, एव ये दो निश्चय वाचक पद कहनेसे ओ३म् से भिन्न ब्रह्म नहीं इसका निषेध किया है] (ब्रह्म) अपर नाम सगुण ब्रह्म है (एतत् , एव, अक्षरम् , परम्) यही ओ३म् अक्षर पर नाम सर्व उपाधियों से रहित निर्गुण शुद्ध ब्रह्म है इन ही अपर और पर दोनों ब्रह्म की प्रतीक रूप (एतत् , हि, एव) (अक्षरम्) इस वाच्य वाचक एक रूप अक्षर को (ज्ञात्वा) जान के (यः) जो पुरुष (यत्) जिस संसार वा परमार्थ सम्बन्धी सुख को (इच्छति) चाहता है (तस्य, तत्) उसको वह सुख शीघ्र ही अवश्य प्राप्त होता है ॥

भा०—यहां पर ब्रह्म चाहने से पहिले वाक्य में अर्थापत्ति से अपर ब्रह्म सिद्ध होता है। सगुण निर्गुण दोनों की उपासना में ओम्—इस प्रतीक की उपासना ही मुख्य अभीष्ट साधक है। यही शब्दात्मक ओम् अक्षर उपास्य ब्रह्म है ऐसा जान के जो पुरुष जिस कामना को सिद्ध करना चाहता है उसको वही सुलभ है ॥ १६ ॥

एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १७ ॥

This support ... the best This support ... the supreme This support Knowing ... worshipped

अ०—ब्रह्मज्ञानालम्बनेषु (एतत्) पूर्वोक्तप्रकारकमुपासनरूपम् (आलम्बनम्) (श्रेष्ठम्)

अत्यन्तं प्रशस्यम् (एतत्) (आलम्बनम्) (परम्) परमार्थसुखसाधकम् (एतत्) (आलम्बनम्)इतरेतराध्यासेनोक्तप्रकारकमुपासनम् (ज्ञात्वा) (ब्रह्मलोके) ब्रह्मैव लोको लोक्यो दर्शनीयो ज्ञातव्यइति ब्रह्मलोकस्तस्मिन् (महीयते) उपासनादिसंस्कृतवासनाभिः शान्तरूपः सुखी निरुपद्रवः पूजितः सत्कृतो भवति ॥

भा०—कर्मोपासनाज्ञानानामवान्तरभेदभिन्नान्यनेकानि ब्रह्मज्ञानस्य साधनान्यालम्बनानि सन्ति तेषु ओमिति नाम्ना शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासेनोमिति प्रतीकेन तद्वाच्यस्य चोपासनं सर्वोत्तमं परमार्थसाधकमस्ति तत्तत्त्वतो विज्ञाय विद्वान् मुक्तो भवितुमर्हति ॥ १७ ॥

भाषार्थः—ब्रह्मज्ञान के साधनों में (एतत्) यह पूर्वोक्त प्रकार की उपासना रूप (आलम्बनम्) साधन (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) परमार्थ सुख का सिद्ध करने वाला है (एतत्, आलम्बनम्) इस उक्त उपासना से ब्रह्म को (ज्ञात्वा) जानके (ब्रह्मलोके) जानने योग्य व्यापक ब्रह्म के बीच (महीयते) सब बाधाओं से छूट कर शान्ति रूप सुख से पूजित होता है

भा०—कर्म उपासना और ज्ञानों के भीतरी भेदों सहित

ब्रह्मज्ञान के अनेक साधन हैं उन में ओ३म् नाम से पूर्वोक्त प्रकार अध्याय के साथ उपासना करनी वा ओम्—इस प्रतीक द्वारा उसके वाच्य ब्रह्म की उपासना करनी सर्वोत्तम और परमार्थ को सिद्ध करने वाली है। उस उपासना से तत्त्वज्ञान होकर ही विद्वान् पुरुष मुक्तिका अधिकारी हो सकता है॥१७॥

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ १८॥

अन्वयः—येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येकइत्यात्मज्ञानं वरो नचिकेतसा याचितः पुनश्च यमेन ब्रह्मात्मनि प्रतिपाद्यमाने नचिकेतसा सुखदुःखानित्यत्वादिधर्मवर्जितं ब्रह्मात्मानं पृष्टेन यमेन त्रिभिर्मन्त्रैर्ब्रह्मणः परमपरं च—ओमित्यालम्बनं सर्वथोत्तमं निरूपितमधुना परमात्मनः स्वरूपं विशेषेण निरूप्यते॥

(अयम्) (विपश्चित्) मेधावी ज्ञानस्वरूपः सर्वज्ञो वा, शरीरउत्पद्यमाने (न, जायते) नोत्पद्यते (वा) नकारसमुच्चयार्थः (म्रियते) शरीरे म्रियमाणे न म्रियते (कुत-

श्चित्) कस्मादपि कारणादुपादानात् (न,ब-भूव) नोत्पन्नः । अस्माच्चात्मन उपादानात् (कश्चित्) पुत्रादिः संसारो वा न बभूव अ-तोऽयमात्मा (अजः) अजन्मा प्रादुर्भावबर्जितः (नित्यः) परिणामविकारादिरहितः (शाश्वतः) सनातनः (पुराणः) इदानीमिव पुरापि नवो-ऽप्राप्तजीर्णावस्थः शरीरस्थोऽपि (शरीरे) (ह-न्यमाने) (न, हन्यते)

भा०--उत्पत्तिधर्मकं सर्वमनित्यमिति त-स्यानेके विकारास्तेषामाद्यन्ते जन्ममरणे वि-कारावात्मनि प्रतिषिध्येते शरीरादिस्थोऽपि सर्वविधविकाररहित आत्मेत्याशयः ॥

भाषार्थः—तृतीय वर मांगते समय नचिकेता ने कहा था कि मनुष्यके मरने पर कोई आत्मा शेष रहता है वा नहीं? आत्मज्ञान वर मांगाथा लिस पर यमराजने ब्रह्मका प्रतिपादन किया तब नचिकेता ने सुख दुःखादि से विशेष कर पृथक् निर्गुण ब्रह्म को पूंछा तब यमराज ने तीन मन्त्रों से ब्रह्म का पर अपर दोनों प्रकारका ओ० यह सर्वोत्तम आलम्बन निरूपण किया अब परमात्मा का स्वरूप विशेष कर कहते हैं ॥

(अयम्) यह(विपश्चित्)ज्ञानस्वरूप वा सर्वज्ञ आत्मा ब्रह्म शरीर के उत्पन्न होने पर (न, जायते) उत्पन्न नहीं होता (वा) और (म्रियते) शरीर के मरने प्राण छूटने से नहीं मरता (कुतश्चित्) किसी उपादान कारणसे (न,बभूव) उत्पन्न नहीं हुआ और इस उपादान आत्मा से (कश्चित्)

कोई पुत्रादि वा संसार नहीं उत्पन्न होता इस कारण अयम्) यह आत्मा (अजः) अजन्मा है (नित्यः) परिणाम में जैसे दूध से दही होता वैसे बदलना वा विकार घटना बढ़ना इस का नहीं होता (शाश्वतः) सनातन (पुराणः) अब के तुल्य पहिले भी सदा नवीन एक रस है । शरीर में रहने पर भी (शरीरे) शरीर के (हन्यमाने) नष्ट होने पर भी(न,हन्यते) नष्ट नहीं होता ॥

भा०—उत्पन्न होने वाले सभी वस्तु अनित्य होते उनमें अनेक विकार होते हैं । उन विकारोंमें से आत्मामें आदि अन्त के जन्म मरण रूप दो विकारोंका निषेध करते हैं । शरीरादि में जीव रूपसे रहता हुआ भी आत्मा सब प्रकार के विकारों से रहित है ॥

The Killer if thinks that he kills the Killed if thinks

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुꣳहतश्चेन्मन्यते

Killed Both these do not know well This Kill

हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायꣳ-

nor is Killed.

हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

अ०—(हन्ता) शरीरमात्रआत्मदृष्टिर्जनः (चेत्) यदि (हन्तुम्) आत्मानं ताड़यितुं नाशयितुं वाहं शक्त इति (मन्यते) (हतः) ताड़ितः प्राणभृत् (चेत्) यदि (हतम्) हतोहमिति विनष्टमात्मानम् (मन्यते (तौ, उभौ) स्वमात्मानम् (न, विजानीतः) यतः (अयम्) आत्मा कंचिदपि (न,हन्ति) अविकारित्वाद् हननस्य कर्त्ता न भवति (न,

हन्यते) अच्छेद्यत्वादिधर्मवत्त्वाद्धननस्य कदापि न भवति ॥

भा०—देहात्मवादमन्तरेण नेदं वक्तुं शक्यते यदहं कस्यापि हन्ता केनापि हतो वा देहात्माहङ्कारेणायं व्यवहारः प्रवर्त्तते आत्मज्ञाने च सत्यहङ्कारनिवृत्तौ कस्यापि हननमपि न संभवति ॥

भावार्थः—(हन्ता) शरीर मात्रको आत्मा मानने वाला पुरुष (चेत्) यदि (हन्तुम्) कि मैं आत्माको मार सकता हूं ऐसा (मन्यते) मानता है और (हतः)ताड़ना किया गया प्राणी (चेत्) यदि (हतम्) आत्मा नाम मैं ताड़ना को वा विनाश को प्राप्त हुआ ऐसा (मन्यते) मानता है । तो (तौ-उभौ) वे दोनों मारने वाले अपने आत्मा के तत्व स्वरूप को(न,विजानीतः)नहीं जानते क्योंकि जिस कारण (अयम्) यह आत्मा किसी को अविकारी होने से (न,हन्ति) नहीं मारता और (न, हन्यते) अच्छेद्य अभेद्य आदि गुण युक्त होने से न किसी से मारा जाता है ॥

भा०—शरीरको आत्मा मानना रूप देहात्मवादके विना कोई नहीं कह सकता कि मैं किसी का मारने वाला वा किसी से मारे जाने वाला हूं देहात्मवादके कारण यह व्यवहार होता है । और आत्मज्ञान होने पर अहंकार की निवृत्ति होने से किसी का हनन नहीं हो सकता ॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य
जन्तोर्निहितो गुहायाम् । तमक्रतुः प-

श्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमा-
त्मनः ॥ २० ॥

अन्वयः—शरीरस्थएव परमात्मा (अणोः) सूक्ष्मादपि (अणीयान्) अत्यन्तसूक्ष्मो सर्वसूक्ष्माकारः (महतः) आकाशपृथिव्यादिरूपः (महीयान्) अणुमहत्सर्वनामरूपवस्तूपाधिकः एवंभूतः (आत्मा) (अस्य, जन्तोः) चैतन्यविशिष्टस्य शरीरस्य मध्ये (गुहायाम्) हृदयैकदेशे (निहितः) जीवरूपेण स्थितः (तम्) एवं भूतं परमात्मानम् (अक्रतुः) लौकिकफलाकाङ्क्षया कर्माण्यकुर्वन्, इत्थं कृत्वेमं भोगं प्राप्स्यामीत्यादितृष्णया वियुक्तः शान्तो विषयेष्वलिप्तः कृतप्रत्यगात्मकुण्ठिरतएव (वीतशोकः) विगतशोकः प्राणी विजानाति (धातुप्रसादात्) धातोः सर्वविषयधारिकाया बुद्धेः प्रसादात् शुद्धत्वात् । रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् । आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ भ० गी० (आत्मनः) (महिमानम्) महत्त्वं सर्वमयत्वम् (पश्यति) संस्कृतया मनीषया विजानातीत्यर्थः ॥

भा०-यथा घटादिस्थ आकाश एव महदल्पसर्वोपाधिमानस्ति न त्वणूपाधिर्महोपाधिर्वाऽऽकाशो घटाकाशादुभिद्यते तद्वच्छरीरस्थएवेश्वरः सर्वोपाधिकोऽस्ति। एवंभूतमात्मानं यःशान्तलौकिककर्मा सर्वेन्द्रियाणि विजित्य प्रज्ञाप्रसादमारुह्य ध्यायति स परमोत्तमसुखभाक्च भवति ॥ २० ॥

भापार्थः—यह जीवरूप से शरीर में स्थित ही ब्रह्म (अणोः) सूक्ष्म से भी (अणीयान्) सूक्ष्म है (महतः) आकाश पृथ्वी आदि बड़े२ पदार्थों के रूपोंवाला (महीयान्) छोटी बड़ी सब नामरूप उपाधियों वाला ऐसा (आत्मा) परमेश्वर (अस्य, जन्तो;) इस चेतन शरीर के बीच (गुहायाम्) हृदय के एक प्रान्त में (निहितः) जीवरूप से स्थित है (तम्) ऐसे परब्रह्म को (अक्रतुः) लौकिक फल भोग की आशा से कर्म न करता हुआ अर्थात् इस कर्म को कर के इस भोग को प्राप्त होऊंगा इत्यादि प्रकार की तृष्णा से वियुक्त शान्तिशील विषयों में न लिप्त हुआ भीतर को दृष्टि रखने वाला इसी से (वीतशोकः) शोक रहित विद्वान् पुरुष जानता है (धातुप्रसादात्) सब विषयों की धारण करने वाली बुद्धि के (शुद्ध) प्रसन्न होने से (आत्मनः) आत्माके (महिमानम्) सर्व रूप होने को (पश्यति) जानता है। भगवद्गीता में लिखा है कि रागद्वेष रहित इन्द्रियों से जब विषयों का सेवन करता है तब मनुष्य के इन्द्रिय वशमें होने से बुद्धि प्रसन्न हो जाती है ॥

भा०—जैसे घटादि में जो आकाश है वही छोटे बड़े सब पदार्थों में वैसा २ छोटा बड़ा दीखता है किन्तु सुई के छेद का वा बड़े घर का आकाश घटाकाश से भिन्न नहीं है, वैसे शरीरस्थ चैतन्यात्मक ईश्वर ही सब छोटे बड़े वस्तुओं में सर्वरूप हो रहा है। इस प्रकार के परमेश्वर का लौकिक कर्म जिस के शान्त हो गये वह पुरुष सब इन्द्रियों को जीत और बुद्धि की प्रसन्नता रूप महल पर चढ़ के ध्यान करता और सर्वोत्तम सुख का भागी होता है ॥ २० ॥

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः। कस्तं मदामदन्देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥ २१ ॥

अ०--इदानीं यमः परेशस्य दुर्ज्ञेयत्वमाह य आत्मा (आसीनः) शरीरोपाधिनैकत्रोपविष्टोऽपि (दूरम्) मानसोपाधिः सन् दूरं दूरतरंवा (व्रजति) गच्छति यश्च (शयानः) तमोऽभिभूतेऽन्तःकरणे विषयेभ्य इन्द्रियाणां विरामावसरे स्वप्ने मानसोपाधिरात्मा (सर्वतः) सर्वप्रदेशे (याति) शरीरेऽवस्थितोपि मानसव्यापारेण संस्कारवशाद्यातीवेति लक्ष्यते (तम्) (देवम्) चैतन्यद्युतिमन्तम् (मदामदम्) इष्टानिष्टोपलब्धौ हर्षाहर्षकरं सहर्षमहर्षं च परस्परविरुद्धधर्मिणम् (म-

दन्यः) मादृशात्सूक्ष्मप्रज्ञादन्यः (कः) ज्ञातुमर्हति । मत्सदृशः कश्चिदेव ज्ञातुं शक्त इत्यर्थः । यदि यमादन्यो ज्ञातुमशक्तः स्यात्तर्हि नचिकेतस उपदेशस्यानर्थक्यप्रसंगः । अतो मामनन्यज्ञातारं मत्वा श्रद्धया मदुपदेशं नचिकेताः शृणुयादिति यमाशयः ॥

भा०—य उपविशति नासौ दूरं गच्छति, यश्चैकत्र शेते न स सर्वत्र भ्रमति । शरीरस्थ एक एवात्मा कुत्राप्यासीनोऽपि दूरं गच्छति शयानोऽपि सर्वत्र याति प्रसन्नोऽप्रसन्नश्च दृश्यते । एवं परस्परविरुद्धधर्मकं सूक्ष्मविशुद्धमतिरेव कश्चिद्विद्वानेव वेदितुं शक्नोति न सर्वः ॥२१॥

भावार्थः—अब यमराज आत्मतत्त्व का दुर्ज्ञेय होना कहते हैं (आसीनः) शरीर रूप उपाधि के साथ एकत्र बैठा हुआ भी (दूरम्) मन रूप उपाधि के साथ दूर वा अत्यन्त दूर तक (व्रजति) चला जाता है । और जो (शयानः) विषयों से इन्द्रियोंका विराग तथा तमोगुण से अन्तःकरणके आच्छादित होने समयमें शरीर से लेटा हुआ स्वप्न में मन उपाधि वाला आत्मा (सर्वतः) सब प्रदेशों में (याति) प्राप्त होता है शरीर में स्थित भी मानस व्यापार से बाहर जाता जैसा प्रतीत होता है (तम्) उस (देवम्) चेतना रूप प्रकाश से युक्त (मदामदम्) इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें सुख भोग मानने वाले हर्ष शोक युक्त परस्पर विरुद्ध धर्मों वाले आत्मा(मदन्यः)

मुझ से भिन्न (कः) कौन (ज्ञातुमर्हति) जान सकता है ?. अर्थात् मेरे तुल्य सूक्ष्म बुद्धि वाला कोई ही जान सकता है। यदि यमराज से भिन्न कोई न जान सकता तो नचिकेता के लिये उपदेश करना भी व्यर्थ था। इससे मुझको मुख्य ज्ञाता जानकर नचिकेता श्रद्धा पूर्वक मेरे उपदेशको सुने यह यमराज का अभिप्राय है ॥

भा०—जो कहीं बैठता है वह दूर२ नहीं जा सकता तथा जो लेटा सोता है वह सर्वत्र भ्रमण नहीं कर सकता। परन्तु शरीरस्थ एक ही आत्मा कहीं बैठा हुआ भी दूर जाता, लेटा हुआ भी सर्वत्र भ्रमण करता हर्ष शोक वाला भी दीखता है ऐसे विरुद्ध धर्म वाले आत्माको सूक्ष्म तथा शुद्ध बुद्धि वाला कोई विद्वान् ही यथावत् जान सकता है, सब कोई नहीं जान सकता ॥ २१ ॥

अशरीरꣳशरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २२ ॥

अ०—तद्विज्ञानाच्छोकहानं दर्शयति- (अनवस्थेषु) अवस्थितिरहितेषु देवमनुष्यपश्वादीनाम् (शरीरेषु) हिंस्यमानेषु प्राणिनिकायेषु (अशरीरम्) लिङ्गादिशरीरधर्मवर्जितमेव (अवस्थितम्) अचलमेकरसं नित्यमविकृतम् (महान्तम्) महत्परिमाणविशिष्टम् (विभुम्) व्यापकम् (आत्मा-

नम्) परमात्मानम् (मत्वा) (धीरः) मनीषी विद्वान् (न, शोचति) शोकाकुलो न भवति ॥

भा०—परमात्माऽनित्येषूत्पत्तिविनाशवत्सु शरीरेषु तिष्ठन्नपि तद्ध्वंसे न ध्वंस्यते यद्यपि परमात्मा सर्वस्मिन् जगति व्यापकत्वेनावस्थितस्तथापि चेतनाधिष्ठिते शरीरे प्राप्यते दर्पणे मुखच्छायेवेति कृत्वा शरीरेष्ववस्थित इत्युच्यते मनुष्यस्तद्व्यापकं ब्रह्म विदित्वैव श्रेयः प्राप्तुमर्हति नान्यथा अर्थाद्यो जानाति शरीरावस्थितोऽप्यहमात्मा शरीरं नास्मि तन्नाशे नाहं नश्यामि वास्तवपरस्वरूपेणाहं विभुर्महानखण्डोऽस्मि जरामरणादिरहितो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावोऽस्मि स हर्षशोकौ जहाति ॥ २२ ॥

भावार्थः—अब इस मन्त्र में परब्रह्म को जाननेसे शोक का छूटना दिखाते हैं (अनवस्थेषु) जिन की स्थिरता नहीं ऐसे देव मनुष्य पशु आदि प्राणियों के (शरीरेषु) नाशवान् शरीरों में (अशरीरम्) लिङ्ग शरीरादि के धर्म से वर्जित (अवस्थितम्) अचल एक रस अविकारी रहता है उस (महान्तम्) सबसे बड़े अनन्त (विभुम्) व्यापक (आत्मानम्) परमात्मा को (मत्वा) जानकर (धीरः) पण्डित विद्वान् पुरुष (न, शोचति) शोक नहीं करता ॥

भा०—परमात्मा उत्पत्ति विनाश धर्मवाले अनित्य शरीरों में स्थित हुआ भी उन शरीरों के नाश होने में आप नष्ट नहीं होता। यद्यपि परमात्मा व्यापक होने से सब जगत् में अवस्थित है तो भी शुद्धान्तःकरण मनुष्यके चेतन शरीरों में ही प्राप्त हो सकता है जैसे दर्पण में मुख की छाया दीखती और सर्वत्र वैसी शुद्धि न होने से नहीं दीखती ऐसे ही जब अन्तःकरण ठीक शुद्ध हो जाता है तभी उस में परमात्मा का स्वरूप भासित होता है जड़ पदार्थों में कभी ईश्वर प्राप्त नहीं होता इस कारण शरीरों में अवस्थित है ऐसा कहा। मनुष्य उस व्यापक ब्रह्म को जान के ही कल्याण पा सकता है अन्यथा नहीं अर्थात् जो जान लेता है कि शरीर में रहता हुआ भी मैं आत्मा शरीर नहीं हूं, इसी कारण शरीर के नष्ट होने पर मैं नष्ट नहीं हूंगा क्योंकि वास्तविक परमात्मरूप से मैं विभु महान् अखण्ड जरा मरण रहित नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव हूं वह हर्ष शोक छोड़ देता है ॥ २२ ॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳ स्वाम् ॥२३॥

अ०—(अयम्) (आत्मा) (प्रवचनेन) अध्यापनेनोपदेशेन वा (न) (लभ्यः) (न, मेधया) न शास्त्रार्थधारणावत्या बुद्ध्या (न) न च (बहुना श्रुतेन) बहूनां शास्त्राणां पठनेन श्रवणेन लभ्यः कथन्तर्हि लभ्यस्तदाह

(एषः) मनुष्यः (यमेव) स्वमात्मानमेव मनसा वाचा कर्मणाऽनन्यचेताः (वृणुते) स्वीकरोति प्रार्थयति स्तौत्युपास्ते नान्यं कञ्चिदुपास्यबुद्ध्या मनुते (तेन) मनुष्येण (लभ्यः) (एषः, आत्मा) (तस्य) तस्मै चतुर्थ्यर्थे षष्ठी (स्वाम्) (तनूम्) स्वस्य यथार्थंरूपम् (वृणुते) प्रकाशयति ज्ञापयति ॥ २३ ॥

वेदादिशास्त्रेषु प्रवीणाः स्मृतिमन्तो वेदानामध्यापने तदाशयोपदेशे वा कुशला बहुश्रुताश्च लोकएव प्रतिष्ठिता भवन्ति। नहि वेदशास्त्रादीनां ज्ञानमात्रं ब्रह्मप्राप्तिहेतु भवितुमर्हति किन्तु शास्त्राण्यधीत्य तल्लेखानुसारमनन्यचेता यदा ब्रह्मात्मानमुपास्ते तदाऽयं प्राप्यात्मज्ञानजन्यसुखभाग्भवति। ब्रह्म च प्रसन्नं सत्तस्मै स्वस्वरूपं प्रकाशयति अर्थाद्विद्वान्ताभिप्रायं जानन् स्वयमैकान्तिकेन मननेन स्वयमेव स्वस्य वास्तवं स्वरूपं जानाति ॥२३॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (आत्मा) परमेश्वर (प्रवचनेन) पढ़ाने वा उपदेश करने की शक्तिसे (न, लभ्यः) प्राप्त होने योग्य नहीं (न, मेधया) शास्त्र के सिद्धान्त को धारण करने वाली बुद्धिसे नहीं प्राप्त होता और (बहुना, श्रुतेन)

बहुत शास्त्रोंके पढ़ने वा बहुत से शास्त्रादि सम्बन्धी उपदेश सुनने से भी (न) नहीं प्राप्त होता। तो कैसे प्राप्त होता है सोभी कहते हैं (एषः) यह मनुष्य (यमेव) जिस कारण परमात्मा को ही मन वचन कर्म से एकचित्त हो के (वृणुते) स्तुति प्रार्थना करता सब समय उसी का विचार वा ध्यान करता है एक से भिन्न अन्य किसी को उपास्य नहीं मानता (तेन) उस मनुष्य से (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है (एषः) (आत्मा) यह परमात्मा (तस्य) उस मनुष्य के लिये (स्वाम्) अपने (तनूम्) यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित कर देता अर्थात् जता देता है॥

भा०—वेदादि शास्त्रों में प्रवीण स्मरण रखने वाले वेदों के पढ़ाने वा उन के अभिप्राय का उपदेश करनेमें कुशल और बहुश्रुत लोग संसार में ही प्रतिष्ठित होते हैं वेद शास्त्रों के जानने मात्र से ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता किन्तु शास्त्रों को पढ़ के उन में लिखे अनुसार अनन्य चित्त होके जब ब्रह्म की उपासना करता है तब यह प्राणी आत्मज्ञान से होने वाले सुख का भागी होता और प्रसन्न हुआ ब्रह्म भी उस के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश कर देता है अर्थात् वेदान्त के आशय को जानता हुआ स्वयं केवल मनन वा विचार से आप ही अपने असली आत्मस्वरूप को जान लेता है॥ २३॥

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः। नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥ २४॥

अ०—(दुश्चरितात्) वेदस्मृतिषु प्रतिषिद्धाच्चौर्य्यानृतमायादिपापकर्मणः (अविरतः)

नोपरतो नविरक्तः पुरुषः (एनम्) परमा-त्मानम् (न) प्राप्नोति (न) (अशान्तः) विषयभोगासक्तमनाश्चञ्चलचेताः (न) (असमाहितः) समाधानवर्जितः संशयात्मा विक्षिप्तचित्तो वा (वा) क्रियासमुच्चये (न) (अशान्तमानसः) बाह्येन्द्रियशैथिल्येनैकाग्रचित्तोऽपि कर्मफलासक्तमनाः (अपि) प्राप्तुमर्हति कथन्तर्हि (प्रज्ञानेन) सर्वविषयवासनासु दुःखदर्शनेन कृतपरवैराग्याभ्यासेन मोक्षज्ञानेनात्मानम् (आप्नुयात) प्राप्तुमर्हति ॥

भा०—मनुष्यः शास्त्राण्यधीत्यान्येभ्यश्च ब्रह्मोपदेशं श्रुत्वापि यावद्दुराचाराद् व्यभिचारचौर्यादिकर्मणो न विरक्तो भवति यावच्च विषयभोगवासनारज्जुषु बद्धान्तःकरणो न तावत्परमात्मानं प्राप्तुं योग्यो भवति किन्तु "शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन् वा स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः । संसारबीजक्षयमीक्षमाणः स्यान्नित्यमुक्तोऽमृतभोगभागी ।" इति योगभाष्यधृतव्यासवचनमनुसृत्य प्रतिक्षणतत्त्वज्ञानचित्तेन विदुषा प्राप्तुं शक्यः स्वरूपावस्थितिरेवात्र प्राप्तिः ॥ २४ ॥

भावार्थः—जो पुरुष (दुश्चरितात्) वेद वा धर्म शास्त्रों में निषेध किये चोरी मिथ्या भाषण और छल कपटादि पाप कर्म से (न, अविरतः) विरक्त नहीं हुआ वह (एनम्) इस परमात्मा को (न) नहीं प्राप्त होता (अशान्तः) इन्द्रियों के लम्पट होने से जिस का मन विषयभोग में आसक्त है वह चंचलचित्त (न) नहीं प्राप्त होता (असमाहितः) जिस को किसी गुरु वा शास्त्र पर पूरा विश्वास नहीं सब में संशय है वा जो विक्षिप्त है वह भी (न) नहीं प्राप्त होता (वा) और (अशान्तमानसः) बाह्य इन्द्रियों की शिथिलता से एकाग्र-चित्त होने पर भी कर्मोंके फल वा धनादि की तृष्णामें जिस का मन फंसा है वह (अपि) भी (न) नहीं प्राप्त होसकता तो कैसे प्राप्त हो सकता है—(प्रज्ञानेन) सब विषय की वासनाओं में दुःख दृष्टि करके पर वैराग्य के अभ्यास रूप मोक्षके ज्ञान से परमात्मा को (आप्नुयात्) प्राप्त हो सकता है ॥

भा०—मनुष्य सब शास्त्रों को पढ़के और अन्य विद्वानों से ब्रह्मज्ञान का उपदेश सुन के भी जब तक व्यभिचार चोरी मिथ्या भाषणादि दुष्ट कर्म से विरक्त नहीं होता और जब तक विषय भोग की वासना रूप रस्सियों से उस का अन्तःकरण बंधा है तब तक परमात्मा को वह नहीं प्राप्त होसकता किन्तु शय्या पर लेटा आसन पर बैठा और मार्ग में चलता हुआ सब चेष्टा करता हुआ भी सब समय कुतर्क छोड़ स्वस्थ चित्त संसार से छूटने का ध्यान करता हुआ नित्य मुक्त और ईश्वर सम्बन्धी सुख का भागी होता है इस योग भाष्य में लिखे व्यास जी के वचन के अनुसार प्रतिक्षण तत्त्व-ज्ञान में चित्त रखनें वाला विद्वान् प्राप्त हो सकता है अपने स्वरूप में अवस्थिति ही आत्मप्राप्ति है ॥ २४ ॥

death but condiment.

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनम् । मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ २५ ॥

अ०—(यस्य) परमात्मनः (ब्रह्म) ब्राह्मणः (च) अपि (क्षत्रम्) राजन्य (च) अपि (उभे) द्वावपि (ओदनम्) प्रलयावसरे भक्ष्ये उदरेऽन्नमिवान्तर्गते लीने (भवतः) (यस्य) (उपसेचनम्) ओदनस्योपरि घृतमिव (मृत्युः) भवति (सः) परमात्मा (यत्र) यस्यां दशायां यादृशोवाऽस्ति (इत्था) इत्थमेवं भूतएवेति (कः वेद) सर्वदुःख परित्यक्तः सुखैकरूपो जीवन्मुक्त एव जानाति यद्वा को-वेद रूपादिगुणरहितत्वादेवंप्रकारकएवास्तीति न कोपि जानाति ॥

भा०—ब्रह्मक्षत्रशब्दावुपलक्षणार्थावुभौ। ब्रह्मक्षत्रधर्मयोर्याथातथ्येन प्रचारे सर्वप्रजानां शान्तिः सुखं च जायते । इमावेव पूर्वौ वर्णौ सर्वव्यवहारसुखहेतू स्तः । यदा तावपि यस्य भक्ष्यौ भवतः । यश्च मृत्युः सर्वप्राणहारको जीवनाशकः सर्वमारकः सोऽपि ब्रह्मक्षत्रादि-

up, He being the eternal life
support. How can the ignorant with all phy
consciousness know of that Atman, the sl
unity, where merge all distinctions of c

भक्ष्येण साकमुपसिक्तो यस्य भक्ष्यो भवति तर्हीतरस्य साधारणस्य, वैश्यादेः प्राणिनः का कथा?। अर्थात्सर्वं ब्रह्मक्षत्रादि जगद्यत्र लीयते यो मृत्योरपि मारकस्तं कश्चिदेव मुमुक्षुः सर्वदुःखविमुक्तो याथातथ्येन जानाति ॥२५॥

इति द्वितीया वल्ली समाप्ता ॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस परमात्माके (ब्रह्म) ब्राह्मण (च) तथा (क्षत्रम्) क्षत्रिय (च) भी (उभे) दोनों (ओदनम्) पेट में भाद्यान्न के तुल्य प्रलय समय लीन (भवतः) होते हैं। (यस्य) जिस का (उपसेचनम्) भात पर घी के तुल्य ब्राह्मणादि के साथ (मृत्युः) मृत्यु भी भक्ष्य हो जाता है (सः) वह परमात्मा (यत्र) जिस दशा में वा जैसा है (इत्था) इसी प्रकार का है ऐसा (कः वेद) सब दुःखों से पृथक् सुखस्वरूप एक जीवन्मुक्त पुरुष ही जानता है। अथवा (कः,वेद) रूपादि गुण से रहित होने से ऐसा ही है यह कोई नहीं जानता ।

भा०—इस मन्त्र में ब्रह्मक्षत्र दोनों शब्द उपलक्षणार्थ हैं। ब्राह्मण और क्षत्रिय धर्म के यथावत् प्रचार होने से ही सब प्रजा में शान्ति और सुख होता है ये ही पहिले दोनों ब्राह्मण क्षत्रिय वर्ण सब व्यवहार सम्बन्धी सुखके हेतु हैं जब वे दोनों भी जिसके भक्ष्य होते हैं और जो मृत्यु सब को मारने वाला सब के जीवन का नाशक है वह भी ब्राह्मणादि जगत् के प्रलय में जिस का भक्ष्य होता है तो इतर साधारण वैश्यादि की क्या कथा है! अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रियादि सब जगत् जिस में लीन होता जो मृत्यु को भी मरने वाला है

उस को सब दुःखों से छूटा कोई मुमुक्षु पुरुष यथार्थ जानता है ॥ २५ ॥ The 2 aspects of the Self

यह द्वितीय वल्ली समाप्त हुई ॥

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां
प्रविष्टौ परमे परार्द्धे । छायातपौ ब्रह्मविदो
वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ १ ॥

अ०—विरुद्धफले विद्याऽविद्ये उक्ते गतवल्ल्यां तद्विवेचनाय रथकल्पनां वक्ष्यति रथरूपकद्वारा प्राप्यप्रापकविवेकार्थमात्मद्वयमुपन्यस्यते । (परमे) श्रेष्ठे (परार्द्धे) बाह्याकाशापेक्षया परं ब्रह्मणः प्राप्तिहेतुत्वादर्द्धमृद्धियुक्तं तस्मिन्हृदयाकाशे (गुहाम्) गुहायां बुद्धौ गुप्तप्रदेशे (प्रविष्टौ) स्थितौ (स्वकृतस्य) एकेन स्वकर्मणा प्राप्तमितरेण तत्कर्मानुसृत्यस्वकर्मणा प्रापितमिति द्वयोः कर्मणः सम्पन्ने (लोके) लोक्ये दर्शनीये शरीरे (ऋतम्) अवश्यंभावित्वात् सत्यं कर्मफलम् (पिबन्तौ) सेवमानौ भुञ्जानौ वा जीवात्मपरमात्मानौ (ब्रह्मविदः) तत्त्वज्ञाविरक्ताः (छायातपौ) अज्ञत्वसर्वज्ञत्वाभ्यां तमःप्रकाशाविव विलक्षणौ (वदन्ति) (ये,च) (त्रिणाचिकेताः)

individual & the Supreme soul is described between light & shade (as) an object & its image; is real & the other is only its shadow. or, the ... refer to their contrary nature, one is ...

त्रिःकृत्वो नाचिकेतोऽग्निश्चितो यैस्ते (पञ्चाग्नयः) आहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निसभ्यावसथ्याः पञ्चाअग्नयो येषां ते गृहस्था अपि शुद्धचिदाभासरूपौ वदन्ति।

भावार्थः—यद्यपि परमेश्वरो वस्तुतः कर्त्ता भोक्ता नास्ति तथाप्ययस्कान्तवत्सन्निधिमात्रेण कर्त्तृत्वं मत्वोक्तम्। यथाऽऽतपोऽविच्छिन्नः स्वच्छो व्याप्तः प्रकाशात्मकस्तथैव परेशोऽप्यविच्छिन्नः शुद्धो ज्ञानात्मकश्चास्ति। प्रकाशस्यावरणमात्रं छाया नतु वस्त्वन्तरमेवं सूक्ष्मस्थूलशरीरेणाज्ञानात्मकमावरणमेवात्र छायापदवाच्यो जीवो नतु वस्त्वन्तरमतएव देहात्मवादाद्यज्ञाननिवृत्तावेकात्मतापत्तिरेवेश्वरप्राप्तिरिति तत्त्वज्ञा वदन्ति मन्यन्ते च॥१॥

भावार्थः—गत द्वितीय वल्लीमें विरुद्ध फल वाली विद्या अविद्याका वर्णन करचुके हैं उन दोनोंके विवेचनार्थ रथकल्पना आगे कहेंगे उस रथ रूपक द्वारा प्राप्यप्रापक भेद दिखाने के लिये दो आत्मा का वर्णन किया है—(परमे) सर्वोत्तम (परार्द्धे) ब्रह्मप्राप्ति का हेतु होने से शोभा शान्ति युक्त बाहरके अवकाशकी अपेक्षा पर हृदयकाश में (गुहाम्) गुप्तस्थलबुद्धि में (प्रविष्टौ) स्थित (स्वकृतस्य) जीवात्माने अपने कर्म से प्राप्त किये और परमात्मा ने जीवके कर्मानुसार अपने कर्मसे प्राप्त कराये इस प्रकार दोनों के कर्म से सिद्ध हुए (लोके)

dृष्टिगोचर होने वाले शरीर में (ऋतम्) अवश्य भोगा जाने वाला होने से सत्य कर्मफल का (पिवन्तौ) सेवन वा भोग करते हुए जीवात्मा और परमात्मा (छायातपौ) छाया और घाम के तुल्य अर्थात् अन्धकार प्रकाश के तुल्य अल्पज्ञ सर्वज्ञ भेद्से विलक्षण हैं ऐसा (ब्रह्मविदः) ब्रह्मवेत्ता तत्त्वज्ञानी विरक्त विद्वान् लोग (वदन्ति) कहते वा कहते आये हैं (च) और (ये जो (त्रिणाचिकेताः) तीन वार जिन्हों ने नाचिकेत नामक अग्नि का चयन यज्ञ किया वे (पञ्चाग्नयः) आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, सभ्य और आवसथ्य इन पांच अग्नियों में अग्निहोत्र दर्शपौर्णमासादि यज्ञ करने वाले गृहस्थ लोगभी शुद्ध ब्रह्म तथा चिदाभासको घाम तथा छाया के तुल्य कहते हैं।

भा०—यद्यपि परमेश्वर वस्तुतः कुछ भी कर्त्ता भोगता नहीं तथापि सुकृतके समीप होने मात्रसे कर्त्ता मानकर कर्म फल भोगना कहा है जैसे घाम स्वच्छ प्रकाशात्मक तथा अपरिच्छिन्न व्याप्त है वैसे परमेश्वर भी ज्ञान प्रकाशात्मक शुद्ध अपरिच्छिन्न है। प्रकाशका आवरणमात्र छाया होती है वस्त्वन्तर नहीं, वैसेही स्थूल सूक्ष्म शरीर के साथ अज्ञानरूप आवरणही छाया स्थानी जीव है किन्तु वस्त्वन्तर जीव नहीं है। इसीसे देहात्मवादादि अज्ञान के निवृत्त होने पर एकात्मता होनाही ईश्वर प्राप्ति कहाती है ऐसा तत्त्वज्ञानी लोग कहते मानते हैं ॥ १ ॥

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् । अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि ॥ २ ॥

अ०—(यः) अवरात्मा (ईजानानाम्) यज्ञशीलानां विधियज्ञं ज्ञानयज्ञं योगयज्ञं वानुतिष्ठतां प्राणिनाम् । लिटः कानच् । (सेतुः) पुलइवास्ति (नाचिकेतम्) नचिकेतसे यमेन प्रोक्तो नाचिकेतोऽग्निस्तमग्न्याद्यात्मकं कर्मिणां दुःखात्तारकं वयम् (शकेमहि) ज्ञातुम । (यत्) यच्च दुःखात् (पारम्) (तितीर्षताम्) तर्त्तुमिच्छतां विदुषाम् (अभयम्) नास्ति भयमस्मिन्नस्य वा तत् (अक्षरम्) अविनश्वरम् (परम्) प्रकृष्टम् (ब्रह्म) अस्ति तद्द्वयं ज्ञातुं शकेमहि ॥

भा०--यथाजलाशयस्यावारापारगमनाय सेतुर्भवति तथैव सांसारिकदुःखेभ्यः पारं तर्त्तुमिच्छद्भिर्जनैरिन्द्रियाणि वशीकृत्य स्वात्मानुकूलं यागादिकं कर्त्तव्यम् । यः कामक्रोधलोभमोहादिवशानुग आत्मविरुद्धमाचरति न स जगति कल्याणभाग्भवितुमर्हति । आत्मैवह्यात्मनोबन्धुरित्युक्तत्वात् । सर्वदुःखदलनार्थं च परमात्मज्ञानायेयोगः कार्यः । ऐहिकपारमार्थिकसुखसाधनायेन्द्रियवशीकर-

णपूर्वकं जीवात्मपरमात्मनोर्ज्ञानसम्बन्धि सामर्थ्यं सदा सर्वैर्वर्द्धनीयम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (ईजानानाम्) विधियज्ञ अग्निहोत्रादि का ज्ञानयज्ञ का वा योगयज्ञका सेवन करने वाले प्राणियों का (सेतुः) पुल के समान है उस (नाचिकेतम्) यमराजने नचिकेता के लिये कहा अग्नि नाचिकेत कहाता उस अग्नि आदि देवात्मक कर्मनिष्ठ मनुष्योंको दुःखसे पार करने स्वर्ग पहुंचाने वाले आत्मा को हमलोग (शकेमहि) जान-सकें और (यत्) जो दुःखसे (पारम्) पार (तितीर्षताम्) पहुंचने की इच्छा वाले विद्वानों का प्रिय (अभयम्) निर्भय (अक्षरम्) अविनाशी (परम्) सर्वोत्तम (ब्रह्म) ब्रह्म है उस को हमलोग जानें वा जान सकने का सामर्थ्य धारण करें ॥

भा०—जैसे नदी आदि जलाशय के पार जाने को पुल बनाया जाता है वैसे ही संसारी दुखोंसे पार होनेकी इच्छा करते हुए पुरुषों को उचित है कि इन्द्रियों को वश में करके अपने आत्मा के अनुकूल वेदोक्त यज्ञादिका सेवन करें। जो काम क्रोध लोभ मोहादि के वशीभूत हुआ आत्मा से विरुद्ध आचारण करता है वह संसारमें कल्याणभागी नहीं होसकता क्योंकि आत्माका बन्धु आत्माही है यह भगवद्गीतामें कहा है। और सब दुःखों का नाश होनेके लिये परमात्माके ज्ञान का उद्योग करना चाहिये। संसारके वा परमार्थके सुख सिद्धि के लिये इन्द्रियोंको वशमें करके जीवात्मा परमात्माके ज्ञान सम्बन्धी सामर्थ्य को सदा बढ़ाना चाहिये ॥ २ ॥

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु । बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३ ॥

अ०-इदानीं सोपाधिकस्य विद्याऽविद्ययो-रधिकृतस्य देहिनो मोक्षगमनाय संसारगमनाय च ससाधनं शरीरं रथत्वेन कल्पयति--हे नचिकेतस्त्वम् (आत्मानम्) जीवात्मानम् (रथिनम्) रथस्वामिनम् । रथोऽस्यास्तीति स्वस्वामिसम्बन्धे मतुवर्थेइनिः।(विद्धि)जानीहि (शरीरम्)(एव)(तु)(रथम्)विद्धि (बुद्धिम्) अध्य-वसायलक्षणमन्तःकरणवृत्तिम्(तु)(सारथिम्) (विद्धि) (मनः) सङ्कल्पविकल्पात्मकम् (एव च) (प्रग्रहम्) नियन्त्रीं रशनाम् ॥

भा०--यथा लोकेऽश्वैरथ आकृष्यत एवं शरीरमिन्द्रियैर्विषयेष्वाकृष्यते। सारथिना रशनाबद्धैरश्वैरथो नीयते तथैव मनोजुष्टैरिन्द्रियैर्बुद्ध्या शरीरं नीयते व्यवहारे चाल्यते ॥३॥

भाषार्थः—अब विद्या अविद्याका अधिकारी सोपाधिक शरीरस्थ आत्माके मोक्ष और संसार सागरके लिये गमन करने के अर्थ इन्द्रियादि साधनों सहित शरीर को रथ रूप से वर्णन करते हैं—हे नचिकेतः तुम (आत्मानम्) जीवात्मा को (रथिनम्) रथ का स्वामी (विद्धि) जानो (तु) और (शरीरम्) शरीर को (एव) ही (रथम्) रथ जानो (तु) और (बुद्धिम्) निश्चयात्मक अन्तःकरणकी वृत्ति रूप बुद्धिको (सारथिम्) रथका चलाने वा घोड़ों रूप इन्द्रियोंका हांकने

वाला (विद्धि) जानो (च) और (मनः) संकल्प विकल्प करने वाले मन को (एव) ही (प्रग्रहम्) लगामकी रस्सी जानो ॥

भा०—जैसे लोक में घोड़ों से रथ खींचा जाता है वैसे ही इन्द्रियों से विषय रूप मार्ग में शरीर खींचा जाता है और जैसे सारथि लगाम लगे हुए घोड़ों से रथ को चलाता है वैसे ही मन रूप लगाम से नथे हुए इन्द्रियों से बुद्धि रूप सारथि व्यवहार में शरीर को चलाता है ॥ ३ ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् । आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

अ०—(इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि (हयान्) रथवाहकान् (आहुः) विद्वांसो ब्रुवन्ति (तेषु) इन्द्रियेषु (गोचरान्) मार्गान् (विषयान्) रूपादीनाहुः (मनीषिणः) मनस ईषिणो वशीकृतमानसाः (आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम्) शरीरेन्द्रियमनोयुक्तमात्मानम् (भोक्ता) (इति, आहुः) ॥

भा०—हयरूपैरिन्द्रियैर्विषयेषु रथो भ्राम्यते शरीरं भोगायतनं तस्मिन्सेन्द्रिये समनस्के सत्येव रथस्वामी जीवात्मा रथचालनफलेन सुखदुःखेन युज्यते । नाशरीरस्यात्मनो भोगः कश्चिदस्तीति न्यायः । आधारमन्तरेणाधेयकार्यं न संपद्यते इति यावत् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रियाणि) चक्षु आदि इन्द्रियों को (ह-यान्) शरीर रूप रथ के खैंचने वाले घोड़े (आहुः) विद्वान् लोग कहते हैं (तेषु) उन इन्द्रियों में (विषयान्) रूपादि विषयों को (गोचरान्) मार्ग कहते हैं तथा (मनीषिणः) मन को वश में करने वाले विद्वान् (आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम्) शरीर इन्द्रिय और मन कर के युक्त जीवात्मा (भोक्ता) भोक्ता है (इति,आहुः) ऐसा कहते हैं ॥

भा०—घोड़े रूप इन्द्रियों से विषयों में शरीर रूप रथ-चलाया जाता है।सुख दुःख भोगका स्थान शरीर है उस शरीर के इन्द्रियों वा मन सहित होने पर ही रथ का स्वामी जीवात्मा रथ चलाने से हुए सुख दुःखरूप फल से युक्त होता है क्योंकि न्याय शास्त्र में वात्स्यायन ऋषि ने लिखा है कि शरीर रहित आत्मा को सुख दुःख का भोग नहीं होता अ-र्थात् आधार के विना आधेयका काम सिद्ध नहीं होता ॥४॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन म-नसा सदा । तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टा-श्वाइव सारथेः ॥ ५ ॥

अ०-(यः) पुरुषः (तु) अविज्ञानवान्) विज्ञनरहितोऽविवेकी विषयेष्वेव लम्पटः (अ-युक्तेन) अनिगृहीतेनासमाहितेननियमविरुद्धे-न चलेन (मनसा) (सदा) युक्तः (भवति) (तस्य) (सारथेः) (दुष्टाश्वाइव) (इन्द्रिया-णि) (अवश्यानि) स्वेच्छाचारीणि स्वथं स-

थिनं दुःखगर्त्तंपातयितुं समर्थानि भवन्ति ॥

भा०—इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते । तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ १ ॥

इन्द्रियाणां स्वाभाविकेन विषयग्राहकत्वधर्मेण साकं यदा पुरुषेण मनः संयोज्यते तदा सारथिरूपा बुद्धिरपि वहिर्भवति । एवमन्तःकरणस्थाया या विवेकशक्तेर्वाहिर्मुखत्वात्पुरुषोऽविज्ञानवान् जायते । विषयमार्गे विचरत्स्विन्द्रियेषु मनसः संयोजनाद्दुष्टाश्वाइवेन्द्रियाणि दुःखदानि भवन्ति ॥ ५ ॥

भावार्थः—(यः) जो पुरुष (तु) तो (अविज्ञानवान्) विषयों में लिप्त अज्ञानी (अयुक्तेन) संयम युक्त न रोके गये नियम विरुद्ध चलायमान (मनसा) मन से (सदा) सदा युक्त (भवति) रहता है (सारथेः) सारथि के (दुष्टाश्वाइव) दुष्ट घोड़ों के तुल्य (तस्य) उस के (इन्द्रियाणि) इन्द्रियां (अवश्यानि) स्वाधीन शरीर रूप रथ सहित आत्मा को दुःख रूप गढे में गिराने को समर्थ होते हैं ॥

भा०—भगवद्गीता में लिखा है कि जब विषयों में विचरते हुए इन्द्रियों के साथ मन लगाया जाता है तब वे नौका को वायु के तुल्य मनुष्य की बुद्धि को हर ले जाते हैं । विषय का ग्रहण करना रूप इन्द्रियों के स्वाभाविक सामर्थ्य के साथ जब पुरुष मन को संयुक्त करता है तब सारथि रूप बुद्धि

(As a clever charioteer restrains the horses by a clever intelligent manipulation of the reins, so one [keeps] the senses under control through prop: dis[cipline] & the employment of will force.)

भी मन के साथ लग जाती है इस प्रकार अन्तःकरण में रहने वाली विचार शक्ति के बहिर्मुख हो जाने से मनुष्य अज्ञानी हो जाता है और विचरते हुए इन्द्रियों में मन के संयुक्त करने से दुष्ट घोड़ों के तुल्य इन्द्रिय दुःखदायी हो जाते हैं ॥५॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा । तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वाइव सारथेः ॥ ६ ॥

अ०—(यः) सदसद्विवेकी विद्वान् (युक्तेन) अभ्यासवैराग्याभ्यां वशीकृतेन समाहितेन (मनसा) सह (सदा) (विज्ञानवान्) विवेकशीलो विषमदोषदर्शी (भवति) (सारथेः) (सदश्वाइव) (तस्य) (इन्द्रियाणि) (वश्यानि) भवन्ति ॥

भा०—यदा पुरुषेण रशनारूपं मनो वशे स्थाप्यते तदा रागद्वेषवियुक्तैरिन्द्रियैर्विषयान् गृह्णन्नपि रश्मिरूपस्य मनसो निगृहीतत्वादिन्द्रियाण्यपि वशी भवन्ति । एवमन्तःकरणशक्तेः प्रत्यगात्ममुखत्वाद्विवेकशीलो जायते । विषयमार्गे विचरत्स्वपीन्द्रियेषु मनसो निगृहीतत्वादिन्द्रियाणि सदश्वाइव सुखप्रदानि भवन्ति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(तु) और (यः) जो (युक्तेन) अभ्यास वैराग्य से वश में किये समाहित (मनसा) मन से (सदा) प्रतिक्षण युक्त सत् असत् का विवेक करने वाला विद्वान् (विज्ञानवान्) विचार शील विषय भोग में दोषदर्शी (भवति) होता है (सारथेः) सारथि के (सदश्वाइव) श्रेष्ठ घोड़े जैसे (तस्य) उस के (इन्द्रियाणि) इन्द्रिय (वश्यानि) वशी भूत हो जाते हैं ॥

भा०—जब पुरुष लगाम रूप मन को वश में करता है तब रागद्वेष रहित इन्द्रियों से रूपादि विषयों का ग्रहण करता हुआ भी लगाम की रस्सी के तुल्य मन के पकड़े होने से इन्द्रिय भी वश में हो जाते हैं। इस प्रकार अन्तःकरण की शक्ति के भीतर रुकने से ज्ञानी विचार शील हो जाता है। विषय रूप मार्ग में विचरते हुए भी इन्द्रियों में मन के वशी भूत होने से श्रेष्ठ घोड़ों के तुल्य इन्द्रिय सुख देने वाले हो जाते हैं ॥ ६ ॥

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः। न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ ७ ॥

अ०—पञ्चमषष्ठमन्त्राभ्यां यदुक्तं तस्येदानीं द्वाभ्यां फलमभिधत्ते-(यः,तु) (सदा) (अशुचिः) छलकपटादि दोषमलैर्लिप्तः (अमनस्कः) अनिगृहीतमनस्कोऽधृतरशनः सारथिरिवाकुलचेताः (अविज्ञानवान्) विवेकरहितः (भवति) (सः) रथी जीवात्मा तेनेन्द्रि-

याधीनेन सारथिना (तत्,पदम्) अतीन्द्रियं प्रापणीयमक्षरं ब्रह्म (नआप्नोति)(च) अपितु (संसारम्) जन्ममरणप्रवाहमागमापायिसुख-दुःखालयम् (अधिगच्छति) प्राप्नोति ॥

भा०—यथा यस्य रथिनः सारथेर्वशेऽश्वा न भवन्ति स स्वाभीष्टं स्थानं नैव लभतेऽपितु यत्राश्वा नयन्ति तत्रैव गर्तादौ पतति तथैव यस्याश्वरूपाणीन्द्रियाणि वशी भूतानि न भवन्ति स आत्मपराङ्मुखो विषयासक्तोऽखिलोपद्रवविरहं शान्तिसुखमयं ब्रह्म न प्राप्नोति किंच मुहुर्मुहुर्दुःखालयमेवाप्नोति॥७॥

भावार्थः—पांचवें छठे मन्त्र से जो विषय कहा था उस का फल अब दो मन्त्रों से कहते हैं। (यः,तु) और जो मनुष्य (सदा) सदा (अशुचिः) छल कपटादि दोष रूप मलों से युक्त अशुद्ध (अमनस्कः) जिसने लगामकी रस्सी को ठीक नहीं पकड़ा उस सारथी के तुल्य मन को वश में न करने से व्याकुल चित्त (अविज्ञानवान्) विवेक रहित (भवति) होता है (सः) वह रथ का स्वामी जीवात्मा इन्द्रियोंके आधीन हुए बुद्धि रूप सारथी से (तत्) उस (पदम्) परोक्ष प्राप्त होने योग्य अविनाशी ब्रह्म को (न,आप्नोति) नहीं प्राप्त होता (च) किन्तु (संसारम्) अनित्य सुख दुःखों के भण्डार जन्म मरण के प्रवाह को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है ॥

भा०—जैसे जिस रथस्वामी के सारथि के वश में घोड़े नहीं होते वह अपने अभीष्ट स्थान को नहीं प्राप्त होता किन्तु

जहां घोड़े ले जाते हैं वहीं गढ़े आदि में गिरता है। वैसे ही जिस पुरुष के घोड़े रूप इन्द्रिय वश में नहीं हैं वह आत्म ज्ञानके विचारों से विमुख विषयों में आसक्त पुरुष सब उप-द्रवों से रहित शान्ति और सुख स्वरूप ब्रह्म को नहीं प्राप्त होता किन्तु बार २ दुःख सागर में डूबता है ॥ ७ ॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः । स तु तत्पदमाप्नोति य-स्माद् भूयो न जायते ॥ ८ ॥

अ०—(यः,तु) (सदा) (शुचिः) परित्य-क्तछलकपटादिदोषमलः शुद्धान्तःकरणः (सम-नस्कः) निगृहीतमानसः (विज्ञानवान्) विवे-कशीलः (भवति) (सः,तु) (तत, पदम्,) परोक्षं प्राप्तुमर्हं ब्रह्म (आप्नोति) तेन सर्व-दुःख विमुक्तो भवति (यस्मात) स्वरूपाव-स्थानात (भूयः) पुनः (न) जायते नोत्पद्यते ॥

भा०—यथा यस्य रथाध्यक्षस्य सारथि-रश्वचालने कुशलः सन्नद्धो निगृहीतदृढरश्मिर्व-शीकृताश्वो गन्तव्यस्थानेकलग्नमना निर्दिष्टं स्थानं सुखेनाप्नोति तथैवाप्रमादी परिक्षी-णवितर्कजालः शुद्धशरीरेन्द्रियान्तःकरणो नि-गृहीतमानसो ब्रह्मप्राप्त्यैकचेताः शाश्वतसुख

स्वरूपं ब्रह्माप्नोति यतः पुनर्दुःखसागरं नाविशति ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(यः,तु,) और जो पुरुष (सदा) सदा (शुचिः) छल कपटादि दोष जिस ने छोड़ दिये इस से शुद्धान्तःकरण (समनस्कः) मन को वस में रखने वाला (विज्ञानवान्) विवेक शील (भवति) होता है (सः,तु) वह तो (तत,-पदम्) उस प्राप्त होने योग्य परोक्ष ब्रह्म को (आप्नोति) प्राप्त होता है जिस से सब दुःखों से छूट जाता है (यस्मात्) जिस स्वरूपावस्थिति से (भूयः.) फिर (न, जायते) संसार में उत्पन्न नहीं होता ॥

भा०—जैसे रथ के अध्यक्ष का भृत्य रथ चलाने में कुशल सवद्ध लगाम की रस्सी को ठीक २ पकड़े हुए घोड़ों को वश में रखने वाला पहुंच ने को अभीष्ट स्थान ही में जिस का चित्त लगा हुआ है वह सारथि विचार किये स्थान में सुख पूर्वक शीघ्र पहुंचता है । वैसे ही प्रमाद रहित, जिस का कुतर्क रूपी जाल नष्ट हो गया, शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरण जिस के शुद्ध शान्त हैं, मन को जिस ने वश में किया है, एक ब्रह्म में ही जिस का चित्त लगा हैं, वह पुरुष सनातन सुख स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है जिस से फिर दुःख सागर में नहीं गिरता ॥ ८ ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ९ ॥

अ०—(यः,तु) (नरः) मनुष्यः (विज्ञान-सारथिः) तपसा शोधिता विवेकशालिनी पर-

मार्थसाधनेषु तत्परा बुद्धिरेव सारथिरूपा यस्य (मनःप्रग्रहवान्) प्रगृहीतमना वशीकृतान्तःकरणः (सः)(अध्वनः)गमनागमनाधिकरणजन्ममरणरूपमार्गस्य (पारम्) (विष्णोः) व्यापकस्य ब्रह्मणः वासुदेवाख्यस्य (परमम्) प्रकृष्टम् (तत्) अतीन्द्रियम् (पदम्) प्राप्यं स्वरूपम् (आप्नोति) प्राप्नोति तन्मयो भवतीति यावत् ॥

भा०—अर्जुनस्य भगवान् श्रीकृष्णइव यस्य रथस्वामिनो सारथिर्विज्ञः स्वामिकार्यसाधनैकचेताश्च भवति स दुर्गमपि पन्थानं यथा सुखेन गच्छति स्वेष्टं स्थानं चाप्नोति तथैव यस्य परमार्थविवेकशीला प्रज्ञा सारथिग्राह्यं रशनारूपं मनो यस्य वशेऽस्ति स संसाररूपमसंख्योपद्रवयुतं दुर्गं पन्थानं तीर्त्वा सर्वोपद्रववर्जितं शान्तमानन्दमयं ब्रह्माप्नोति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यःतु) और जो (नरः) मनुष्य (विज्ञानसारथिः) तप करके शुद्ध हुई सत् असत् के विवेक से युक्त परमार्थ के साधनों में तत्पर बुद्धि ही जिस का सारथि है (मनःप्रग्रहवान्) अन्तःकरण रूप मनको जिसने वशमें किया है (सः) वह पुरुष (अध्वनः)जाने आनेके अधिकरण जन्म मरण रूप मार्ग के (पारम्) पार (विष्णोः) व्यापक वासुदेव नामक

ब्रह्म के (परमम्) सर्वोत्तम (तत्) उस इन्द्रियोंसे अगम्य परोक्ष (पदम्) प्राप्त होने योग्य स्वरूपको (आप्नोति) प्राप्त होता वा तन्मय हो जाता है॥

भा०—अर्जुनके सारथी श्रीकृष्ण भगवान् के तुल्य जिस रथ के स्वामी का सारथी विचारशील,स्वामीके कार्यमें चित्त को लगाने वाला होता है वह जैसे कठिन मार्ग को भी सुख पूर्वक व्यतीत करता और अभीष्ट स्थान वा वस्तु को प्राप्त हो जाता है वैसे ही जिस पुरुष की परमार्थ में विवेकशील बुद्धि तथा सारथि रूप बुद्धिके आधीन लगाम की रस्सी के समान मन जिस के वश में है वह असंख्य उपद्रवोंसे युक्त संसार रूप कठिन मार्गके भी पार होके सब उपद्रवोंसे रहित आनन्द तथा आनन्द स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है॥ ९॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥ १०॥

अ०—इदानीं भौतिकेन्द्रियाण्यारभ्य सूक्ष्मसूक्ष्मतरक्रमेणाधिगन्तव्यस्य ब्रह्मणः प्राप्तेरुपायउच्यते (इन्द्रियेभ्यः) भौतिकेभ्यः (अर्थाः) रूपादयो विषयाः (पराः) सूक्ष्माः (च) (अर्थेभ्यः) विषयेभ्यः (मनः) (परम्) सूक्ष्मतरम् (च) (मनसः) (बुद्धिः) निश्चयात्मिका चित्तवृत्तिः (परा) सूक्ष्मतरा (बुद्धेः) (महान्,आत्मा) हिरण्यगर्भो महत्तत्वाख्यः (परः) सूक्ष्मः ॥

भा०—स्थूलानीन्द्रियाणि शक्तिरूपाणि भूतसूक्ष्मेभ्य उत्पद्यन्ते तद्यथा पृथिवीतन्मात्राद्घ्राणं जलतन्मात्राद्रसनाऽग्नितन्मात्राच्चक्षुर्वायुतन्मात्रात्स्पर्शनमाकाशतन्मात्राच्छ्रोत्रम्। कार्यात्कारणं परं सूक्ष्ममेव भवतीत्यत इन्द्रियेभ्योऽर्थाः सूक्ष्माः। तन्मात्रभूतसूक्ष्माणां कारणत्वादहंकाररूपं मनः सूक्ष्मं ततश्चाध्यवसायलक्षणा बुद्धिः परा ततोऽपि महत्तत्त्वं सूक्ष्मतरम्। एवं मुमुक्षुणा सूक्ष्मात्सूक्ष्मे विचारः प्रवर्त्तनीयः ॥ १० ॥

भावार्थ—अब भौतिक इन्द्रियोंसे लेकर सूक्ष्मसे अति सूक्ष्म क्रम से प्राप्त होने योग्य ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय कहते हैं (इन्द्रियेभ्यः) पृथिव्यादि तत्त्वों से बने इन्द्रियों से (अर्थाः) गन्ध आदि विषय (पराः) सूक्ष्म (च) और (अर्थेभ्यः) विषयों से (मनः)मन (परम्) अति सूक्ष्म है (च) और (मनसः) मनसे (बुद्धिः) निश्चयात्मक ज्ञानरूप बुद्धि(परा)सूक्ष्म है(बुद्धेः) बुद्धि से (महान्)(आत्मा)हिरण्यगर्भ रूप महत्तत्त्व (परः) सूक्ष्म है ॥

भा०—स्थूल इन्द्रियोंकी विषय ग्राहक शक्ति सूक्ष्म भूतोंसे उत्पन्न होती है जैसे पृथिवी तन्मात्रसे नासिका, जलसे जिह्वा, अग्नितन्मात्रसे नेत्र,वायु तन्मात्रसे त्वचा और आकाश तन्मात्र से श्रोत्र उत्पन्न होते हैं इन सूक्ष्म भूतोंसे उत्पन्न होनेके कारण ही वह२ इन्द्रिय उसी २ तत्त्व के गुण को ग्रहण करता है अर्थात् चक्षु से अग्नि के गुण रूप का ही ग्रहण होता है रस गन्धादि का नहीं इस नियम का कारण उस २ भूत से उत्पन्न

होना ही है अन्यथा कान से गन्ध का ग्रहण न होने में कोई बाधक नहीं कार्य से कारण सूक्ष्म होता है इसी कारण इन्द्रियों से विषय सूक्ष्म कहे गये विषयों का कारण होने से मन उनसे भी सूक्ष्म है मनसे निश्चयात्मक बुद्धि पर है और महत्तत्व उस से भी सूक्ष्म है। मुमुक्षु पुरुष को चाहिये कि इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म में विचार को प्रवृत्त करे ॥ १० ॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११ ॥

अ०—(महतः) महत्तत्त्वात् (अव्यक्तम्) इत्थमिति व्यापारविवर्जित सर्वकार्यकारणशक्ति समाहाररूपं प्रकृत्याख्यमव्याकृताकाशादि-नामवाच्यं परमात्मन्योतप्रोतभावेनाश्रितं वटकणिकायां वटवृक्षशक्तिवन्महतः कारणम् (परम्) तस्मात् (अव्यक्तात्) (पुरुषः) पूर्णः परमात्मा (परः) सूक्ष्मतमः (पुरुषात्) (परम्) सूक्ष्मम् (किञ्चित्) किमपि (न) नास्ति किन्तु (सा)(काष्ठा) स्थितिः पर्यवसानम्(सा) (परा गतिः) यतः परा कस्यापि गतिर्नास्ति॥

भा०—सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिस्तस्याः प्रथमः परिणामो महत्तत्त्वं तस्मादव्यक्तादपरिणतान्महत्तत्वं स्थूलं प्रकृतिश्च सर्ववस्तुभ्यः सूक्ष्मतमा ततश्च पुरि प्र-

ह्माण्डे शयानइव शान्तः स्थितः सूक्ष्मतमः परमात्मास्ति । जगति यावद्वस्तुजातं सूक्ष्मत्वे महत्त्वे च सावधिकं भवितुमर्हति । तेनैवानवस्थापत्तिरूपं दूषणं शास्त्रकृद्भिर्निवार्य्यते। यथा घटपटादिसर्ववस्तूनामधिकरणं पृथिवी तस्या वायुर्ययोराकाशस्तस्यापि ब्रह्माधिकरणम् । तत्र चाधाराधेयभावः परिसमाप्यते नास्ति ब्रह्मणः किमप्यधिकरणम् । यदि स्यात्तर्हि तस्याप्यधिकरणकल्पनेऽनवस्थापत्तिरेव, अतो यः सर्वाधिकरणानामप्यधिकरणं स परमात्मास्ति तथैव यः सर्वसूक्ष्मवस्तुष्वपि सूक्ष्मतमो यस्मात्परं सूक्ष्मं किमपि नास्ति सूक्ष्मत्वमहत्वकर्मगत्यादीनां यत्रावधिः स प्रत्यगात्मदृष्ट्या द्रष्टव्यः । यथेन्द्रियाणामर्था अर्थानां मनो मनसो बुद्धिर्बुद्धेर्महत्तत्त्वं महतोऽव्यक्तं परं परं पूर्वस्यपूर्वस्योपादानं तथैव प्रत्यगात्माऽव्यक्तस्योपादानं परम्परया च सर्वस्योपादानमात्मैवास्त्यत एव सर्वंखल्विदं ब्रह्मेत्याशयः ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(महतः) महत्तत्त्वसे (अव्यक्तम्) इत्यंभूत कथन से रहित प्रकृति नामक महत् कारण (परम्) पर है उस (अव्यक्तात्)अव्यक्त प्रकृति से (पुरुषः) सर्वत्र परिपूर्ण

परमात्मा (परः) अत्यन्त सूक्ष्म है और (पुरुषात्) परमात्मा से (परम्) सूक्ष्म (किंचित्) कुछ भी (न) नहीं है किन्तु (सा) वही (काष्ठा) स्थितिका अवधि [हद्द] तथा (सा) वही (परागतिः) पहुंचने की अवधि--हद्द है उस से आगे किसी की गति वा सूक्ष्मता नहीं है ॥

भा०--सत्वगुण रजोगुण तमोगुण की साम्यावस्था जो प्रकृति है वह अपने परिणाम महत्तत्वसे सूक्ष्म है और प्रकृति सब वस्तुओं से सूक्ष्म है और उस कारणावस्था प्रकृति से ब्रह्माण्ड रूप शरीर में सोते हुए के तुल्य शान्ति पूर्वक स्थित परमात्मा है। जगत् में सब पदार्थों के छोटे बड़े होने की हद्द होती है कि यहां तक यह छोटे से छोटा वा बड़े से बड़ा हो सकता है। इसी नियमसे शास्त्रकार लोग अनवस्था दोष को हटाते हैं। जैसे घट पट आदि सब वस्तुओं का आधार पृथिवी उस का वायु, वायु का आकाश और आकाश का आधार ब्रह्म है। वहीं आधाराधेय भाव सम्बन्ध समाप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्मका आधार कोई नहीं है। यदि ब्रह्म का आधार मानें तो उस आधार का भी अन्य आधार मानने में अनवस्थापत्ति दोष आता है इस लिये आधारोंका आधार परमात्मा है वैसे ही जो सब सूक्ष्म वस्तुओंमें अत्यन्त सूक्ष्म जिससे परे अन्य कोई सूक्ष्म नहीं किन्तु सूक्ष्मता बड़प्पन औरकर्मगतियोंकी जहां अवधि है इन्द्रियोंकी शक्तिको अन्तःकरणकी ओर झुकाके उसको देखना योग्य है। जैसे इन्द्रियोंके उपादान शब्द तन्मात्रादि विषय, विषयों का मन, मन का बुद्धि बुद्धिका महत् और महत्का अव्यक्त पर २ पूर्व २ का उपादान है वैसे ही प्रत्यगात्मा ईश्वर प्रकृति वा मायाका उपादान कारण है परम्परा से सबका उपादान वही है, इसी से यह सब जगत् परमात्म स्वरूप ही है ॥ ११ ॥

भा०—स्थूलानीन्द्रियाणि शक्तिरूपाणि भूतसूक्ष्मेभ्य उत्पद्यन्ते तद्यथा पृथिवीतन्मात्राद्घ्राणं जलतन्मात्राद्रसनाऽग्नितन्मात्राच्चक्षुर्वायुतन्मात्रात्स्पर्शनमाकाशतन्मात्राच्छ्रोत्रम्। कार्यात्कारणं परं सूक्ष्ममेव भवतीत्यतइन्द्रियेभ्योऽर्थाः सूक्ष्माः। तन्मात्रभूतसूक्ष्माणां कारणत्वादहंकाररूपं मनः सूक्ष्मं तत्श्चाध्यवसायलक्षणा बुद्धिः परा ततोऽपि महत्तत्वं सूक्ष्मतरम्। एवं मुमुक्षुणा सूक्ष्मात्सूक्ष्मे विचारः प्रवर्त्तनीयः ॥ १० ॥

भावार्थ—अब भौतिक इन्द्रियोंसे लेकर सूक्ष्मसे अति सूक्ष्म क्रम से प्राप्त होने योग्य ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय कहते हैं (इन्द्रियेभ्यः) पृथिव्यादि तत्वों से बने इन्द्रियों से (अर्थाः) गन्ध आदि विषय (पराः) सूक्ष्म (च) और (अर्थेभ्यः) विषयों से (मनः) मन (परम्) अति सूक्ष्म है (च) और (मनसः) मनसे (बुद्धिः) निश्चयात्मक ज्ञानरूप बुद्धि (परा) सूक्ष्म है (बुद्धेः) बुद्धि से (महान्)(आत्मा) हिरण्यगर्भ रूप महत्तत्व (परः) सूक्ष्म है ॥

भा०—स्थूल इन्द्रियोंकी विषय ग्राहक शक्ति सूक्ष्म भूतोंसे उत्पन्न होती है जैसे पृथिवी तन्मात्रसे नासिका, जलसे जिह्वा, अग्नितन्मात्रसे नेत्र, वायु तन्मात्रसे त्वचा और आकाश तन्मात्र से श्रोत्र उत्पन्न होते हैं इन सूक्ष्म भूतोंसे उत्पन्न होनेके कारण ही वह२ इन्द्रिय उसी २ तत्व के गुण को ग्रहण करता है अर्थात् चक्षु से अग्नि के गुण रूप का ही ग्रहण होता है रस गन्धादि का नहीं इस नियम का कारण उस २ भूत से उत्पन्न

होना ही है अन्यथा कान से गन्ध का ग्रहण न होने में कोई बाधक नहीं कार्य से कारण सूक्ष्म होता है इसी कारण इन्द्रियों से विषय सूक्ष्म कहे गये विषयों का कारण होने से मन उनसे भी सूक्ष्म है मनसे निश्चयात्मक बुद्धि पर है और महत्तत्त्व उस से भी सूक्ष्म है। मुमुक्षु पुरुष को चाहिये कि इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म में विचार को प्रवृत्त करे ॥ १० ॥

महतःपरमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषःपरः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागतिः॥११॥

अ०—(महतः) महत्तत्त्वात् (अव्यक्तम्) इत्थमिति व्यापारवर्जित सर्वकार्यकारणशक्ति समाहाररूपं प्रकृत्याख्यमव्याकृताकाशादिनामवाच्यं परमात्मन्योतप्रोतभावेनाश्रितं वटकणिकायां वटवृक्षशक्तिवन्महतः कारणम् (परम्) तस्मात् (अव्यक्तात्) (पुरुषः) पूर्णः परमात्मा (परः) सूक्ष्मतमः (पुरुषात्) (परम) सूक्ष्मम् (किञ्चित्) किमपि (न) नास्ति किन्तु (सा)(काष्ठा) स्थितिः पर्यवसानम्(सा) (परा गतिः) यतः परा कस्यापि गतिर्नास्ति॥

भा०—सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिस्तस्याः प्रथमः परिणामो महत्तत्त्वं तस्मादव्यक्तादपरिणतान्महत्तत्त्वं स्थूलं प्रकृतिश्च सर्ववस्तुभ्यः सूक्ष्मतमा ततश्च पुरि प्र-

ह्मणि शवानइव शान्तः स्थितः सूक्ष्मतमः परमात्मास्ति । जगति यावद्वस्तुजातं सूक्ष्मत्वे महत्त्वे च सावधिकं भवितुमर्हति । तेनैवानवस्थापत्तिरूपं दूषणं शास्त्रकृद्भिर्निवार्यते। यथा घटपटादिसर्ववस्तूनामधिकरणं पृथिवी तस्या वायुर्वायोराकाशस्तस्यापि ब्रह्माधिकरणम् । तत्र चाधाराधेयभावः परिसमाप्यते नास्ति ब्रह्मणः किमप्यधिकरणम् । यदि स्यात्तर्हि तस्याप्यधिकरणकल्पनेऽनवस्थापत्तिरेव, अतो यः सर्वाधिकरणानामप्यधिकरणं स परमात्मास्ति तथैव यः सर्वसूक्ष्मवस्तुष्वपि सूक्ष्मतमो यस्मात्परं सूक्ष्मं किमपि नास्ति सूक्ष्मत्वमहत्त्वकर्मगत्यादीनां यत्रावधिः स प्रत्यगात्मदृष्ट्या द्रष्टव्यः । यथेन्द्रियाणामर्था अर्थानां मनो मनसो बुद्धिर्बुद्धेर्महत्तत्त्वं महतोऽव्यक्तं परं परं पूर्वस्यपूर्वस्योपादानं तथैव प्रत्यगात्माऽव्यक्तस्योपादानं परम्परया च सर्वस्योपादानमात्मैवास्त्यत एव सर्वंखल्विदं ब्रह्मेत्याशयः ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(महतः) महत्तत्त्वसे (अव्यक्तम्) इत्थंभूत लक्षण से रहित प्रकृति नामक महत् कारण (परम्) पर है उस (अव्यक्तात्)अव्यक्त प्रकृति से (पुरुषः) सर्वत्र परिपूर्ण

परमात्मा (परः) अत्यन्त सूक्ष्म है और (पुरुषात्) परमात्मा से (परम्) सूक्ष्म (किंचित्) कुछ भी (न) नहीं है किन्तु (सा) वही (काष्ठा) स्थितिका अवधि [हद्द] तथा (सा) वही (परागतिः) पहुंचने की अवधि-हद्द है उस से आगे किसी की गति वा सूक्ष्मता नहीं है॥

भा०-सत्वगुण रजोगुण तमोगुण की साम्यावस्था जो प्रकृति है वह अपने परिणाम महत्तत्वसे सूक्ष्म है और प्रकृति सब वस्तुओं से सूक्ष्म है और उस कारणावस्था प्रकृति से ब्रह्माण्ड रूप शरीर में सोते हुए के तुल्य शान्ति पूर्वक स्थित परमात्मा है। जगत् में सब पदार्थों के छोटे बड़े होने की हद्द होती है कि यहां तक यह छोटे से छोटा वा बड़े से बड़ा हो सकता है। इसी नियमसे शास्त्रकार लोग अनवस्था दोष को हटाते हैं। जैसे घट,पट आदि सब वस्तुओं का आधार पृथिवी उस का वायु, वायु का आकाश और आकाश का आधार ब्रह्म है। वहीं आधाराधेय भाव सम्बन्ध समाप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्मका आधार कोई नहीं है। यदि ब्रह्म का आधार मानें तो उस आधार का भी अन्य आधार मानने में अनवस्थापत्ति दोष आता है इस लिये आधारोंका आधार परमात्मा है वैसे ही जो सब सूक्ष्म वस्तुओंमें अत्यन्त सूक्ष्म जिससे परे अन्य कोई सूक्ष्म नहीं किन्तु सूक्ष्मता बड़प्पन औरकर्मेन्द्रियोंकी जहां अवधि है इन्द्रियोंकी शक्तिको अन्तःकरणकी ओर झुकाके उसको देखना योग्य है। जैसे इन्द्रियोंके उपादान शब्द तन्मात्रादि विषय, विषयों का मन, मन का बुद्धि बुद्धिका महत् और महत्का अव्यक्त पर २ पूर्व २ का उपादान है वैसे ही प्रत्यगात्मा ईश्वर प्रकृति वा मायाका उपादान कारण है परम्परा से सबका उपादान वही है, इसी से यह सब जगत् परमात्म स्वरूप ही है॥ ११ ॥

एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मद-
र्शिभिः ॥ १२ ॥

अ०—(एषः) सर्वनियन्ता योगिभिः कृतप्रत्यक्षः (सर्वेषुभूतेषु) ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तेषु (गूढात्मा) गूढोगुप्तश्चासावात्मा चालभ्यः बहुभिरध्येषणात्तत्परैः सूक्ष्मत्वादतीन्द्रियत्वाच्चालभ्योऽकृतप्रज्ञैः । वटवृक्षे वटबीजशक्तिरिव गूढः । (न,प्रकाशते) विषयासक्तेन्द्रियाधीनप्रज्ञया नज्ञायते । (तु) अपितु(अग्र्यया) कुशाग्रमिव प्रवेशनशीलया (सूक्ष्मया) इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्थाइत्युक्तक्रमेण सूक्ष्मविचारापन्नास्पदया (बुद्ध्या) (सूक्ष्मदर्शिभिः) सूक्ष्मविचारतत्परैः पण्डितैः (दृश्यते) ॥

भ०—इन्द्रियाधीनमना बहिर्मुखः कश्चित्सर्वस्मिञ्जगत्यन्वेषणतत्परोऽपि परमात्मानं ज्ञातुं नार्हति किन्तु य इन्द्रियशक्तिं बाह्यान्निरुध्य सर्वप्राणिनिकायेषु काष्ठेऽग्निवद् व्याप्तं परमात्मानं मन्यते स शान्तेन्द्रियमना प्रत्यगात्मनि परिवर्त्तितया सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर-

इन्द्रियार्थमनोबुद्धिमहत्तत्त्वादिविचारे लब्धास्पदया सूक्ष्मबुद्ध्या कारणानामपिकारणं परमात्मानं प्रत्यगात्मरूपेण पश्यति ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(एषः) सबको नियम में रखने वाला योगियों ने जिस को प्रत्यक्ष किया ऐसा (सर्वेषु) ब्रह्मादि स्थावरान्त प्राणिमात्र में (गूढात्मा) गुप्त व्याप्त परमात्मा [बहुत लोग उसके खोजने में लगे रहते हैं तो भी इन्द्रियों से अग्राह्य. अत्यन्त सूक्ष्म होने से प्राप्त नहीं होता इससे गुप्त कहा जाता है किन्तु जैसे वस्त्र आदि से कोई वस्तु ढांप दिया जाय वैसे कहीं छिपा नहीं है [किन्तु वटके वृक्षमें वटके बीजकी शक्ति के तुल्य गुप्त है] (न,प्रकाशते) विषयासक्त इन्द्रियोंके साथ फंसी बुद्धि से नहीं जाना जाता (तु) किन्तु (अग्र्या) कुशकी नोंक के तुल्य सूक्ष्म विषयों में प्रवेश करने वाली (सूक्ष्मया) पूर्वोक्त क्रम से [इन्द्रियों से अर्थ,अर्थसे मन में] सूक्ष्मसे सूक्ष्म में प्रवेश करने वाली (बुद्ध्या) बुद्धि करके (सूक्ष्मदर्शिभिः) सूक्ष्मदर्शी पण्डित जनों से (दृश्यते) देखा जाता है ॥

भा०—जिसका मन इन्द्रियोंके अधीन है जिसकी विचार शक्ति बाह्य विषयों में फैली है वह कोई पुरुष सब जगत्में खोजता हुआ भी परमात्मा को नहीं प्राप्त हो सकता किन्तु जो इन्द्रियों की शक्ति को बाहर से रोक के सब प्राणियों के शरीर में व्याप्त परमात्माको मानता है तथा जिसके इन्द्रिय वा मन शान्तिको प्राप्त हुए वह भीतरी विचार में फेरी हुई इन्द्रिय, अर्थ, मन, बुद्धि और महत्तत्त्वादि सम्बन्धी सूक्ष्म से सूक्ष्म विचारमें प्रवृत्त सूक्ष्म बुद्धिसे कारणोंके कारण परमात्मा को अपने अन्तरात्मरूप से देखता है ॥ १२ ॥

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद् यच्छेज्ज्ञाने आत्मनि । ज्ञानमात्मनि महति नियच्छे-त्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥१३॥

अ०—सूक्ष्मया बुद्ध्या स कथं द्रष्टव्य इत्युच्यते (प्राज्ञः) प्रशस्तातिशयप्रज्ञावान्नरः (मनसी) मनसि । सुपांसुलुगिति विभक्तेरीकारः (वाक्) वाचम् । अत्र विभक्तेर्लुक् । उभयत्र छान्दसं कार्यम् । वागित्युपलक्षणमिन्द्रियाणाम् । (यच्छेत्) विषयेभ्यो निरुध्योपरमयेत् (तत्) मनः (ज्ञाने) ज्ञानप्रकाशस्वरूपायाम् (आत्मनि) अतति सततं मन आदीनीन्द्रियाणि प्राप्नोतीत्यात्मा बुद्धिस्तस्याम् (यच्छेत्) उपरमयेत् (ज्ञानम्) बुद्धिम् (महति, आत्मनि) स्वकार्येषु व्याप्तिमति महत्तत्वे (नियच्छेत्) शान्तयेत् (तत्) महत्तत्वम् (शान्ते) शान्तस्वरूपे (आत्मनि) प्रत्यगात्मरूपे परमात्मनि (यच्छेत्) नियतं कुर्यात् ॥

भा०—परमार्थज्ञानतत्परेण विदुषा सर्वेन्द्रियाणि मनोऽधीनानि मनश्च सारथिरूपबुद्धेर्वशे स्थापनीयम् । बुद्धिर्वसुप्रकृतिसमुदाये परिगणिता सा ततः सूक्ष्मे महत्तत्त्वे निवेश-

नीया महत्तत्त्वं च सर्वबाधाविमुक्ते शान्ते प्रत्यगात्मरूपे परमात्मनि प्रवेशनीयम् । एवं सति सूक्ष्मतरा बुद्धिरन्तर्यामिणमात्मानं द्रष्टुं समर्था भवति ॥ १३ ॥

भावार्थः—वह परमात्मा सूक्ष्म बुद्धिसे कैसे देखने योग्य है सो कहते हैं—(प्राज्ञः) अत्यन्त उत्तम बुद्धियुक्त पुरुष (मनसी) मन में (वाक्) वाणी आदि इन्द्रियोंको (यच्छेत्) विषयों से रोककर ठहरावे(तत्)उस मन को (आत्मनि) मन आदि में निरन्तर प्राप्त होने वाली (ज्ञाने) ज्ञानप्रकाश स्वरूप बुद्धि में (यच्छेत्) ठहरावे (ज्ञानम्) बुद्धि को (महति,आत्मनि) अपने कार्य में व्याप्त महत्तत्त्वमें (नियच्छेत्) शान्त करे (तत्) उस महत्तत्त्वको (शान्ते)शान्त स्वरूप(आत्मनि,अन्तरात्मारूप परमात्मा में (यच्छेत्) नियत करे ॥

भा०—परमार्थ सम्बन्धी ज्ञान में तत्पर विद्वान् को उचित है कि सब इन्द्रियोंको मनके अधीन और सार रूप बुद्धि के अधीन मनको स्थिर करे । आठ प्रकृतियोंमें गिनाई हुई बुद्धि को महत्तत्त्व में प्रवेश करे और महत्तत्त्व को सब दुःखों से छूटे शान्त स्वरूप अन्तरात्मा परमात्मा में लगावे इस प्रकार अति सूक्ष्म बुद्धि अन्तर्यामी परमात्मा के देखने को समर्थ होती है ॥ १३ ॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम्पथ-
स्तत्कवयो वदन्ति ॥१४॥

अ०—हे मनुष्या एवमुक्तप्रकारेण पर-मात्मानं ज्ञातुम् (उत्तिष्ठत) अविद्यानिद्रातः

(जाग्रत) (वरान्) श्रेष्ठान् गुरुत्वेन स्वीकर्त्तव्या-नाचार्य्यानुपदेशकान् वा गुरून् (प्राप्य) (नि-बोधत) सर्वान्तर्यामिणं परमात्मानं विजा-नीत । नह्ययं सुगमो मार्गः किन्तु यथा (नि-शिता) शिल्पिना तीक्ष्णीकृता (क्षुरस्य, धारा) (दुरत्यया) पद्भ्यां दुःखेनात्येतुं योग्या भवति तथैव (कवयः) क्रान्तदर्शिनो विद्वांसः (तत्) तत्त्वज्ञानलक्षणम् (पथः) पन्थानम् (दुर्गम्) दुःखेन गन्तुं योग्यम् (वदन्ति) कथयन्ति ॥

भा०—बहवो जना अभ्यस्तान्यनेकानि कार्य्याण्युपलभ्य जानन्ति किमिदं कार्यम्। य-दाऽऽरप्स्यामहे तदा सुगमतया सद्यो निष्पा-दयिष्यामः। एतदर्थं विशिष्टप्रयासो न का-र्यइति तद्वदत्र न बोद्धव्यम् । एष दुर्गो मार्ग एकगम्यः । यथा क्षुरस्य तीक्ष्णीकृतधाराया उपरि पद्भ्यां गमनं क्लिष्टं भवति तथैव प-रमात्मज्ञानोपायः क्लिष्टस्तदर्थं मनुष्येण म-हान् प्रयासः कार्यः । निद्रालस्यप्रमादाविद्या-दीन् विहाय ज्ञानिगुरुसत्संगसेवाभ्यां परमा-त्मज्ञानस्योपायः सेवनीयः । नात्र स्वस्थता कार्या तस्मात्प्रजागरः कार्यः पुरुषेणदिवा-

निशम् । न मुष्णन्तिछलाद्यस्मात्कामक्रोधादयोऽपिच ॥ १४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस उक्त प्रकारसे परमात्माके जानने को (उत्तिष्ठत) उठो अविद्या रूप निद्रा को छोड़ो (जाग्रत) जागो (वरान्) गुरुभावसे स्वीकार करने योग्य श्रेष्ठ विद्वान् आचार्य्यों वा उपदेशकों को (प्राप्य) प्राप्त होके सर्वान्तर्यामी परमात्मा को वा सत्यासत्य को (निबोधत) जानो यह मार्ग सुगम नहीं है जो आलस्य में पड़े रहने पर भी सहज में प्राप्त हो जावे । किन्तु जैसे (निशिता) बाढ़ कराई हुई (क्षुरस्य) क्षुरा की (धारा) धार (दुरत्यया) पगों से चलने में कठिन होती है वैसे ही (कवयः) दीर्घदर्शी विद्वान् लोग (तत्) उस तत्वज्ञानरूप (पथः) मार्ग को (दुर्गम्) दुःख से प्राप्त होने योग्य (वदन्ति) कहते हैं ॥

भा०—बहुत मनुष्य अभ्यास किये अनेक कामों को प्राप्त हो कर जानते हैं कि यह काम ही क्या है । जब चाहेंगे कर डालेंगे । शीघ्र सिद्ध हो जायगा कठिन ही क्या है इसके लिये हमें विशेष परिश्रम की आवश्यकता नहीं । वैसा विचार इस प्रसंग में न करना चाहिये । यह परमार्थ साधक धर्म सम्बन्धी कठिन मार्ग है इस को पूर्ण विवेकी पुरुष ही प्राप्त हो सकता है इस मार्ग में ज्ञानी अज्ञानी और अज्ञ ज्ञानी माना जाता वा जान पड़ता है । जैसे क्षुरा की तीखी धार पर पगों से चलना कठिन होता वैसे ही आत्मज्ञान का उपाय वा धर्मानुष्ठान कठिन है । कभी धर्म करते २ अधर्म रूप कीच में फस जाता है इस लिये मनुष्य को उचित है कि बड़ा परिश्रम करे । निद्रा आलस्य प्रमाद और अविद्यादि को छोड़ कर ज्ञानी गुरु का सत्संग तथा सेवन कर के परमात्मज्ञान

के उपाय का सेवन करे किन्तु भूल में स्वस्थ न बैठा रहे मनुष्य को काम क्रोधादि शत्रुओं से बचने के लिये दिनरात सचेत रहना चाहिये ॥ १४ ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥१५॥

अ०—(यत्) आत्मतत्त्वं ब्रह्म (अशब्दम्) शब्दगुण आकाशस्तस्माद्भिन्नमशून्यम् (अस्पर्शम्) स्पर्शगुणो वायुस्तद्गुणाद्रहितम् (अरूपम्) वह्नि रूपगुणाद्भिन्नम् (तथा, अरसम्) रसगुणाद्विरहम् (च) (अगन्धवत्) गन्धवती पृथिवी तस्याः पृथग्भूतम्। अतएव (अव्ययम्) न व्येति (नित्यम्) सदैकरसम् (अनादि) न विद्यत आदिः कारणमस्य तत्कारणस्यापि कारणम् (अनन्तम्) न विद्यतेऽन्तं कार्यमस्य (महतः) महत्तत्त्वात् (परम्) सूक्ष्मतरम् (ध्रुवम्) अचलम् (तत्) (निचाय्य) विज्ञाय मनुष्यः (मृत्युमुखात्) जन्ममरणप्रवाहाद्दुःखसागरात् (प्रमुच्यते) ॥

भा०—तस्मान्निमित्तोपादानोभयभूतात्परमात्मन आकाशादि सर्वमुत्पन्नं सकारणं

कार्यं स्वरूपाद्व्येति स्वस्योपादाने प्रलीयतेऽनित्यं भवति । न तथाऽऽत्मा कस्यचित्कार्यमतएव न व्येति न च क्वापि लीयते तस्मान्नित्यम् । तमेवं भूतमात्मानं यो विजानाति सएव दुःखाद्विमुक्तो भवितुमर्हति ॥ १५ ॥

भावार्थः—(यत्) जो ब्रह्मात्मकमात्मतत्त्वम् (अशब्दम्) शब्द गुण आकाश का है उस शून्य आकाश से विलक्षण है (अस्पर्शम्) स्पर्शगुण से वायु जाना जाता है ब्रह्म नहीं (अरूपम्) रूप गुण अग्नि का है उस से भिन्न (तथा, अरसम्) जल के रस गुण से रहित (च) और (अगन्धवत्) पृथिवी के गन्धगुण से भी पृथक् वर्त्तमान है शब्दादि गुण उस में वा उसके नहीं इसी से वह (अव्ययम्) अविनाशी (नित्यम्) सदा एक रस (अनादि) उस का कोई आदि कारण नहीं (अनन्तम्) और न वह किसी का कार्य है (महतः) महत्तत्त्व से भी (परम्) अत्यन्त सूक्ष्म (तत्) उस ब्रह्म को जान के मनुष्य (मृत्युमुखात्) जन्म मरण के प्रवाह रूप दुःख सागर से (प्रमुच्यते) छूट जाता है ॥

भा०—उस निमित्तोपादान कारण रूप परमात्मा से आकाशादि सब जगत् उत्पन्न होता और कारण वाला कार्य अपने स्वरूप से च्युत होता ही है अर्थात् अपने उपादान कारण में लीन हो जाता है इस से अनित्य है वैसे परमात्मा किसी का कार्य नहीं किन्तु सब का कारण है इसी से न स्वरूप से च्युत होता और न किसी में लीन होता है इस कारण नित्य है । उस ऐसे परमात्मा को जो यथार्थ रूप से जानता है वही दुःख से छूट सकता है ॥ १५ ॥

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् । उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ॥१६॥

आ०—वल्लीत्रयेण प्रतिपादितं विषयं स्तुवन्फलं दर्शयति (नाचिकेतम्) नचिकेतसा प्राप्तम् (मृत्युप्रोक्तम्) मृत्युनाम्ना यमाचार्य्येण प्रोक्तम् (सनातनम्) वेदात्मकत्वात्समूलं परम्परयोपदिश्यमानम् (उपाख्यानम्) गुरुशिष्यसम्बन्धिव्याख्यानम् (उक्त्वा) अधिकारिणे भक्तायोपदिश्य ब्रह्मनिष्ठादाचार्य्याच्च (श्रुत्वा) (मेधावी) विवेकी विद्वान् पुरुषः (ब्रह्मलोके) ब्रह्मैव लोक्यो लोकस्तस्मिन् (महीयते) उपासनादिफलेन पूजितो भवति ।

भा०—श्रद्धामन्तरेण मनुष्यः सम्यक्कार्यं नानुतिष्ठति फलाख्यानं च सर्वत्र श्रद्धाविवृद्ध्यर्थं क्रियते साहि कल्याणकारिणी जननीव योगिनं पाति । अतो यः परमात्मानं जिज्ञासेत स एतदुपाख्यानं श्रद्धया गुरुभ्यः शृणुयाच्छिष्येभ्य उपदिशेत । यथोक्तोपायांश्च सततं सेवेत तेन ब्रह्मज्ञानं सुलभं भवति ॥ १६ ॥

Brahmans :- assembly of intelligent devotees who only are able to understand the supreme mysteries & glories of Atman. Sraddha = done in honor of the departed to bring peace to the

भावार्थः—अब तीन वल्लियों में कहे विषय की फल स्तुति दिखाते हैं (मृत्युप्रोक्तम्) यमाचार्य जी ने कहे और (नाचिकेतम्) नचिकेता ने ग्रहण किये (सनातनम्) परम्परा से उपदेश किये गये वेदस्वरूपहोने से सनातन (उपाख्यानम्) गुरु शिष्य संवाद से कथन किये गये विषय को (उक्त्वा) अधिकारी भक्त शिष्य को उपदेश कर और ब्रह्मवेत्ता आचार्य से (श्रुत्वा) सुनकर (मेधावी) विवेकी विद्वान् पुरुष (ब्रह्मलोके) ज्ञान दृष्टि से देखने योग्य ब्रह्म के बीच (महीयते) उपासनादि से हुए फल से सन्तुष्ट सत्कार को प्राप्त होता है ॥

भा०—श्रद्धा के बिना मनुष्य ठीक २ कार्य का सेवन नहीं कर सकता । और श्रद्धा बढ़ाने के लिये फल का कथन किया जाता है यह श्रद्धा कल्याण कारिणी माता के तुल्य योगीकी रक्षा करती है । इससे जो परमेश्वर को जानने की इच्छा करे वह इस संवाद को श्रद्धा पूर्वक गुरुजनों से सुने और शिष्यों के लिये उपदेश करे और इस प्रसङ्ग में कहे उपायों का निरन्तर सेवन करे जिससे ब्रह्मज्ञान सुगम हो जाता है ॥ १६ ॥

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद्ब्रह्मसंसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते
~~तदानन्त्याय कल्पत इति~~ ॥ १७ ॥

अ०—(यः) पुरुषः (प्रयतः) शुद्धशान्तशरीरेन्द्रियमना भूत्वा (इमम्) (परमम्) (गुह्यम्) अधिकारिणे रहसि वक्तव्यं ब्रह्मज्ञानोपदेशम् (ब्रह्मसंसदि) ब्राह्मणसदसि

(वा) अथवा (श्राद्धकाले) मृतान् प्राणिन उद्दिश्य यथाविधि श्राद्धानुष्ठानकाले (श्रावयेत) विप्रेषु भुञ्जानेषु पठेत (तत) श्रावणम् बहुकर्णगतत्वात्संस्कारवासनारूपेण (आनन्त्याय) अनन्तभावाय (कल्पते) समर्थं भवति द्विर्वचनं वल्लीसमाप्त्यर्थम् ॥

भा०—यथाऽनेकयोग्यक्षेत्रेषूप्तं बीजं कुत्रचिद्विशिष्टफलप्रदं जायते तथैवानेकाधिकारिशिष्यसमुदाये श्राद्धकाले वा कृतो ब्रह्मज्ञानोपदेशः कस्मिंश्चिद्विशेषोपकारी भवति यावता प्रयत्नेनैकः श्राव्यस्तावतैव बहवस्तस्माच्छिष्यसमुदाये कृतो ज्ञानोपदेशो लाघवेन विशिष्टफलसाधकः। यस्य विषयस्य यस्तत्त्वं ज्ञातुं शक्तः स तस्याधिकारी । अनधिकारिणे कृतउपदेशोऽन्यथाप्रतिपन्नोऽनर्थाय स्यादिति सम्भवमतः सर्वस्मै सर्वं नोपदेश्यम् । न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनामिति गीतासु ॥ १७ ॥

इति तृतीयावल्ली प्रथमोऽध्यायश्च समाप्तः ।

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (प्रयतः) जिसके शरीर इन्द्रिय और मन शुद्ध शान्त हों ऐसा होके (इमम्) इस (परमम्)

उत्तम (गुह्यम्) अधिकारी पुरुष के लिये एकान्त में कहने योग्य ब्रह्मज्ञान संबन्धी उपदेश को (ब्रह्मसंसदि) ब्राह्मणों की सभा में (वा) अथवा (श्राद्धकाले) मृत पितादि के उद्देश से विधिपूर्वक किये श्राद्धानुष्ठान के समय (श्रावयेत्) भोजन करते हुए ब्राह्मणों को पढ़के सुनावे (तत्) वह उपदेश बहुल कानों में पहुंचने से संस्कार वासना रूप से (आनन्त्याय) अनन्त होने को (कल्पते) समर्थ होता है।

भा०—जैसे अनेक खेतों में बोया बीज किसी में विशेष फल देता है वैसे ही अनेक अधिकारी शिष्यों के समुदाय में वा श्राद्धकाल में किया ब्रह्मज्ञान का उपदेश विशेष उपकारी होता है। जितने परिश्रम वा समय में एक को उपदेश किया जावे उतने में ही बहुतों को हो सकता है इसलिये अनेक के समुदाय में उपदेश करना विशेष फलदायक है। जिस विषय के तत्त्व को जो जान सकता है वही उसका अधिकारी है। अनधिकारी के लिये किया ज्ञानोपदेश उलटा पड़ के अनर्थ कराने वाला हो जाय यह संभव है। इस कारण सबके लिये सब विषय का उपदेश नहीं करना चाहिये॥ १७॥

यह तृतीय वल्ली और प्रथमाध्याय समाप्त हुआ॥

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्। कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥ १॥

अ०—गतवल्ल्यां सूक्ष्मप्रज्ञयात्मा दृश्यत इत्युक्तम्। तत्र चित्तवृत्तिनिरोधकारणमस्यां

वल्यां वक्तुमारभते—(स्वयम्भूः) यः स्वयं प्रादुर्भवति स स्वतन्त्रः परमेश्वरः (खानि) इन्द्रियाणि (पराञ्चि) परान् शब्दादिविषयानञ्चन्ति गच्छन्ति पतन्ति तद्धर्मकानि (व्यतृणत्) व्यरचयत् । धातूनामनेकार्थत्वात्तृहधातोर्निर्माणार्थप्रतिपत्तिः (तस्मात्) कारणात् मनुष्यः (पराङ्) बाह्यविषयम् (पश्यति) किन्तु (न, अन्तरात्मन्) अन्तरात्मानं न पश्यति । छान्दसो विभक्तेर्लुक् (कश्चित्) (धीरः) ध्यानशीलः (आवृत्तचक्षुः) आवृत्ते चक्षुषी यस्य स पुरुषः (अमृतत्वम्) मोक्षभावम् (इच्छन्) (प्रत्यगात्मानम्) अन्तःकरणे व्याप्तं परमात्मानम् (ऐक्षत्) ईक्षते ध्यानेन पश्यति ॥

भा०—परमेश्वरेण मनुष्यस्येन्द्रियाणि विषयग्राहकाणि विषयोन्मुखानि निर्मितानि तस्मात्स विषयानेव पश्यति। आत्ममनःसंयोगमन्तरेणेन्द्रियैर्विषया ग्रहीतुमशक्याः । आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेणेन्द्रियं विषयेणेति तदा विषयं विजानाति । अतो ब्रह्मज्ञानस्येन्द्रियैर्विषयग्रहणमेव निरोधकम् ।

यः कोऽपि मुमुक्षुर्भवेत्तेन चक्षुरादीनां विषय पतनशक्तिः शनैः शिथिलीकार्या। अन्तःकरणस्था बुद्धिवृत्तयो या इन्द्रियछिद्रद्वारा बहिर्निस्सरन्ति तासामन्तर्मुखत्वेन निरोधे ज्ञानवर्धनाद्ध्यानतत्परः परमात्मानं ज्ञातुं शक्नोति। प्रज्ञाचक्षुषां बुद्धेस्तीव्रताया एतदेव कारणम्। प्रज्ञायां बुद्धौ चक्षुषी यस्य स प्रज्ञाचक्षुः। इदं च सर्वसाधारणैरप्यनुभूतं यत्प्रज्ञाचक्षुषां बुद्धिरितरेभ्यो विशिष्टा जायते नह्येतेन प्रमाणेन चक्षुषोर्घातः सम्यगपितु विषयग्रहणाभ्यासो मुमुक्षुणा शिथिलीकार्यः १॥

भावार्थः—गत तृतीय वल्ली में सूक्ष्म बुद्धि से परमेश्वर देखा जाता है ऐसा कहा है सो सूक्ष्म बुद्धि के बिना न दीख पड़ने के कारण चित्त वृत्तियों के निरोध को इस वल्ली में कहने का प्रारम्भ करते हैं (स्वयम्भूः) जिसकी प्रकटता बिना किसी आधार वा कारण के होती है उस स्वतन्त्र परमेश्वर ने (खानि) कान आदि इन्द्रियों को (पराञ्चि) शब्द आदि विषयों पर गिरने रूप स्वभाव से युक्त (व्यतृणत्) बनाया है (तस्मात्) तिसी कारण मनुष्य (पराङ्) बाह्य विषयको (पश्यति) देखता है किन्तु (न, अन्तरात्मन्) अन्तरात्मा को नहीं देखता। यथा (कश्चित्) कोई (आवृत्तचक्षुः) जिस ने अपने नेत्र वस्त्रादि से ढांपे वा मीचे हैं ऐसा (धीरः) ध्यानशील पुरुष (अमृतत्वम्) मोक्ष होने को (इच्छन्)

इच्छा करता हुआ (प्रत्यगात्मानम्) अन्तःकरण में विद्य-मान आत्मा को (ऐक्षत्) ध्यान दृष्टि से देखता है ॥

भा०—परमेश्वर ने मनुष्य के इन्द्रिय विषयों के ग्रहण करने वाले अर्थात् विषयों की ओर झुकने वाले बनाये हैं। इसलिये वह विषयोंको ही देखता है। आत्मा और मन का संयोग हुये विना इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण नहीं हो सकता जीवात्मा मनके साथ मन इन्द्रियके साथ और इन्द्रिय विषयके साथ संयुक्त हो तभी शब्दादि विषयका ज्ञान होता है। इससे इन्द्रियों से विषय का ज्ञान होना ही ब्रह्मज्ञान के न होनेमें कारण है। जो कोई मुमुक्षु हो उस को चक्षु आदि इन्द्रियों की विषयों पर गिरना रूप शक्ति धीरे २ शिथिल करनी चाहिये। अन्तःकरण में स्थित जो बुद्धि की लहरें इन्द्रियों के छिद्रों द्वारा बाहर निकलती हैं उनको भीतरी ओर फेरकर रोकने में ज्ञान के बढ़ने से ध्यान में तत्पर पुरुष परमात्मा को जान सकता है। प्रज्ञाचक्षु लोगोंकी बुद्धिके तीव्र होने का यही कारण है अर्थात् नेत्रों की बाहर फैलने वाली शक्ति जिस की बुद्धि में पहुंच गई वह प्रज्ञाचक्षु वा अन्धा कहाता है। और यह सर्व साधारण लोगों ने भी निश्चित अनुभव किया है कि अन्य की अपेक्षा प्रज्ञाचक्षु की बुद्धि विशेष हो जाती है। इस से यह प्रयोजन नहीं है कि नेत्र फोड़ डालने चाहिये किन्तु मुमुक्षु पुरुष को विषय ग्रहण का अभ्यास शिथिल कर देना वा घटाते जाना चाहिये ॥ १ ॥

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्यो-
र्यन्ति विततस्य पाशम्। अथ धीरा अमृत-
त्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते॥२॥

अ०—ये (वालाः) अज्ञाः । अज्ञो भवति वै वाल इति मनुवचनात् (पराचः)स्वशरीराद्बहिर्भूतानेव (कामान्) चन्द्रमुखीदर्शनादिविषयभोगसंकल्पान् (अनुयन्ति) अनुगच्छन्ति (ते) (विततस्य) प्राणिमात्रे व्याप्तस्य (मृत्योः) (पाशम्) बन्धनहेतुं देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदनासंघातं संयोगवियोगरूपम् (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (अथ) ये (धीराः) विषयभोगाच्छान्ता धैर्यमापन्नाः (ध्रुवम् अमृतत्वम्) मुक्तिदशायाः सुखं स्थालीपुलाकन्यायेन (विदित्वा) (अध्रुवेषु) अनित्यविषयसुखभोगेषु किंचित्सुखम् (न,प्रार्थयन्ते) सांसारिकं सुखं किमपि न याचन्ते ॥

भा०—ये मनुष्या विषयानन्दएवासक्तास्ते विषयसुखापेक्षया मोक्षसम्बन्धिबहुतरसुखाज्ञानादज्ञाः सदा दुःखबहुले जगत्येव भ्रमन्ति ये च विद्वांसस्ते मोक्षदशाया दृढं महत्सुखमनुभूयविषयभोगान्नेच्छन्ति ॥२॥

भावार्थः—(ये) जो (वालाः) अज्ञानी पुरुष (पराचः)शरीरसे भिन्न वस्तुओंसे होने वाले (कामान्) चन्द्रमाके सदृश मुख वाली स्त्री की देखना आदि विषय भोग के संकल्पों के (अ-

nuyanti) अनुकूल भागते हैं (ते) वे (विततस्य) प्राणिमात्र में फैले हुए (मृत्योः) मृत्यु की (पाशम्) शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि आदि के अनित्य समुदाय बन्धन के हेतु फांसी को [यन्ति] प्राप्त होते हैं (अथ) इन से अनन्तर जो [धीराः] विषय भोग से शान्त धैर्य को प्राप्त विद्वान् लोग (ध्रुवम्) निश्चल (अमृतत्वम्) मुक्ति दशा के सुख को (विदित्वा) स्थालीपुलाकन्यायसे जानके (अध्रुवेषु) अनित्य विषयसुख के भोगों में से किसी सुख की (न, प्रार्थयन्ते) याचना नहीं करते अर्थात् किसी प्रकार संसार के किसी सुखको नहीं चाहते ॥

भा०—जो मनुष्य विषयों के आनन्द में ही आसक्त हैं उन को विषय सुख की अपेक्षा मोक्ष संबन्धी बहुत सुख का ज्ञान न होनेसे अज्ञानी कहाते हैं। वे सदा बहुत दुःख वाले जगत् में ही भ्रमा करते हैं। और जो विद्वान् लोग हैं वे मोक्ष दशा के दृढ महत् सुख का अनुभव कर विषय भोग को नहीं चाहते ॥ २ ॥

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान्। एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते। एतद्वै तत् ॥३॥

अ० (येन) सूर्यवत्सर्वचैतन्यप्रकाशकेन सर्वत्रस्तुज्ञानस्य निमित्तभूतेन विज्ञानस्वरूपेण परमात्मना (एतेन, एव) सतैव मनुष्यः (रूपम्, रसम्, गन्धम्, शब्दान्, स्पर्शान्) (च) (मैथुनान्,) मैथुननिमित्तान् सुखप्रत्ययान् (विजानाति) (किमत्र, परिशिष्यते)

न किमपि सर्वं ज्ञेयमात्मसत्तयैव विजानातीति भावः (वै) (एतत्) सत्तात्मकं सर्वज्ञेयहेतुभूतं ब्रह्म (तम्) यत्त्वया नचिकेतसा पृष्टं यत्र दैवैरपि विचिकित्सितम् । यद्धर्मादिभ्योऽन्यद्ब्रह्मणोः परमं पदं चास्ति तदिदमेव ।

भा०—यद्यपि रूपस्य दर्शनेऽदर्शनेऽन्यथादर्शने वा चक्षुः स्वतन्त्रं तथापि सूर्यादेः प्रकाशसाहाय्यमन्तरेण रूपं द्रष्टुमसमर्थं भवति । एवमत्रापि जीवात्मा पुण्यपापे कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं वा स्वतन्त्रस्तथापि परमात्मसत्तामन्तरेण किमपि कर्त्तुं न शक्नोति । यद्यप्ययस्कान्तमन्तरेण लोहः प्रचलितुमशक्तो यथा वा रविमन्तरेण चक्षू रूपं द्रष्टुमशक्तं तथापि सूर्यायस्कान्तयोरप्रयोजकत्वादित्थं कुर्यादितीच्छाभावाच्च तौ फलभागिनौ न भवतस्तथैव परमेश्वरः सर्वचैतन्यजन्यक्रियाणां निमित्तोऽप्यविकारित्वहेतुना न क्वापि लिप्यते । रूपादयो विषया जगदीश्वरेणैव निर्मितास्तेषामुत्पत्तिस्थित्योः कारणं स एव तेन विना तेषां स्थितेरभावाद्रूपादीनां ज्ञानमपि

कस्यचिन्न स्यात् । किमपि तद्वस्तु नास्ति य-त्तत्सत्तया विना प्राणिन उपकारि स्यात् ॥३॥

भावार्थः—(येन) जैसे सूर्य जगत् के सब पदार्थों का प्रकाशक है वैसे चेतनमात्र का प्रकाशक, सब पदार्थों के ज्ञान होने में जो निमित्त उस विज्ञान स्वरूप (एतेन, एव) परमात्मा के विद्यमान रहने ही से मनुष्य (शब्दान्, स्पर्शान्, रूपम्, रसम् गन्धम्) शब्द स्पर्श रूप रस गन्धों (च) और (मैथुनान्) मैथुन जिन का निमित्त है ऐसे सुखानुभवों को (विजानाति) जानता है तो (किमत्र, परिशिष्यते) इस जगत् में क्या जानना बाकी रहा ? क्योंकि इन्हीं शब्दादि में सब ज्ञातव्य विषय का ग्रहण हो जाता है अर्थात् जानने योग्य सब विषय को आत्मा की सत्ता से ही जान सकता है (वै) निश्चय कर (एतत्) यह सर्वदा विद्यमान सब वस्तु ज्ञान का हेतु (तत्) वही ब्रह्म है जिसको तुम नचिकेताने पूछा था जिस के होने में देवों ने भी सन्देह किये जो धर्माधर्म से भिन्न व्यापक स्वरूप है यही ब्रह्म है ॥

भा०—यद्यपि रूप के देखने न देखने वा अन्यथा देखने में आंख स्वतन्त्र है तो भी सूर्यादि के प्रकाश की सहायताके विना रूपको नहीं देख सकती। इसी प्रकार यहांभी चिदाभास जीव पुण्य पाप के करने न करने वा अन्यथा करने में स्वतन्त्र है तो भी परमात्मा की सत्ता के विना कुछ नहीं कर सकता । यद्यपि चुम्बक के विना लोहा चलनेको समर्थ नहीं तथा सूर्य के विना आंख रूप को नहीं देख सकती तो भी चुम्बक वा सूर्य प्रेरणा नहीं करता और न चाहता है कि यह ऐसा करे वा देखे इस से वे दोनों लोहे वा नेत्र के साथ फल भागी नहीं होते। वैसेही परमेश्वर शरीरेन्द्रियोंसे होनेवाली

(१३३)

सब क्रियाओंका निमित्त भी है पर विकारी न होनेसे कहीं लिप्त नहीं होता। रूपादि विषय परमेश्वर ने ही बनाये हैं उन की उत्पत्ति-स्थिति का वही कारण है उस के बिना उन की स्थिति नहीं रह सकती तो उन रूपादि का ज्ञान भी किसी को नहीं हो सकता। अर्थात् जगत् में कोई वस्तु ऐसा नहीं जो उसकी सत्ताके विना प्राणीका उपकारी हो ॥३॥

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥४॥

अ०—उक्तार्थमेव दृढयन्नाह—यो मनुष्यः (स्वप्नान्तम्) स्वप्नसमाप्तिं जागरितावस्थां स्वप्ननाशं वा (जागरितान्तम्) जागरितस्य समाप्तिं स्वप्नावस्थाम् (च) (उभौ) (येन) सत्तात्मकेनैकेन व्याप्तचेतनेन (अनुपश्यति) अनुकूलं पश्यति स (धीरः) ध्यानशीलो विद्वान् (आत्मानम्) (महान्तं,विभुम्) (मत्वा) ज्ञात्वा (न, शोचति) शोकाकुलो न भवति॥

भा०—स्वप्नान्ते जागरितारम्भे जागरितान्ते च स्वप्नारम्भे यान्यान् शब्दादिविषयान् श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियैर्मनसा च येन प्रदीपादिवद्दर्शकेन चेतनेन साधकतमेन पुरुषः पश्यत्य-

नुभवति स एवैको महान् विभुश्चेतन आत्मा-स्ति । इन्द्रियाण्यन्तःकरणं च सर्वं जडं सदा-त्मनैव चेतनं क्रियते तदेव स्वरूपं मत्वा धीरः शोकं जहाति ॥ ४ ॥

भावार्थः—पूर्व कहे विषय को दृढ करते हैं—जो मनुष्य (स्वप्नान्तम्) स्वप्न की समाप्ति जागरित अवस्था वा स्वप्न के नाश (च) तथा (जागरितान्तम्) जागने की समाप्ति स्वप्नावस्था (उभौ) इन दोनों को (येन) जिस विद्यमान स्वरूप एक व्याप्त चेतन रूप प्रदीप से (अनुपश्यति) अनुकूल देखता है वह (धीरः) ध्यान शील विद्वान् (आत्मानम्) अपने को (महान्तम्) सर्वोत्कृष्ट (विभुम्) व्यापक (मत्वा) जान के (न, शोचति) शोकसे व्याकुल नहीं होता॥

भा०—जागने और सोनेके आरम्भ में जिन २ शब्दादि विषयों को श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों तथा मन के द्वारा मनुष्य जिस चेतनता के आश्रय से देखता अनुभव करता है, वही एक चेतन विभु व्यापक आत्मा है, वही ब्रह्म है, इन्द्रियां और अन्तःकरण सभी जड़ होते हुए भी एक चेतन आत्मा से ही चेतन हो जाते हैं वही चेतन मैं हूं ऐसा मानकर विद्वान् शोकरहित हो जाता है ॥ ४ ॥

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् । ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ॥५॥

अ०—(यः) पुरुषो देहादिसंघातः (मध्व-

दम्) मधु मिष्टं कर्मफलमत्ति स मध्वत् तम् (जीवम्) प्राणधारिणम् (इमम्) प्रत्यक्षे देहाभिमानिनम् (आत्मानम्) (अन्तिकात्) समोपे विद्यमानम् (भूतभव्यस्य) अतीतानागतयोः (ईशानम्) स्वामिनमधिष्ठातारम्परमात्मानं वेद स विवेकी (ततः) ज्ञानात (न, विजुगुप्सते) अभयप्राप्तत्वान्न गोपायितुमिच्छति (एतद्वै,तत) एतदेव तज्ज्ञानफलं यत्त्वया नचिकेतसा पृष्टम् ॥

भा०—अतोतानागतयोश्चराचरयोरधिष्ठाता यः परमेश्वरोऽस्ति सएवायमन्तःकरणोपाध्यवच्छिन्नः सन्निहितः कर्मफलभोक्ता जीव आत्मा प्रत्यक्षइति यो जानाति न स भयात्स्वात्मानं रक्षितुमिच्छति ॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (मध्वदम्) रोचक कर्मफलों के भोगने वाले [जीवम्] प्राणों के धारक [इमम्] इस प्रत्यक्ष देह के अभिमानी (अन्तिकात्) समीप में विद्यमान [आत्मानम्] जीवात्मा को [वेद] जानता अर्थात् [भूतभव्यस्य] भूत में हुए तथा भविष्यत् में होने वाले जगत् के [ईशानम्] स्वामी अधिष्ठाता परमात्मा को जानता है वह विज्ञानी पुरुष [ततः] उस ज्ञान के होने से फिर [न विजुगुप्सते] निर्भय हो जाने से अपनी रक्षाकी चिन्ता नहीं करता। [एतद्वैतत्] यही उस के ज्ञान का फल है जो तुझ नचिकेता ने पूछा था ॥

भा०—भूत भविष्य काल में होने वाले संसार का जो अधिष्ठाता परमेश्वर है, वही अन्तःकरण उपाध्यवच्छिन्न समीपवर्त्ती कर्मफल भोक्ता जीवात्मा रूप से प्रत्यक्ष है ऐसा जो जानता है वह निर्भय हो जाने के भय के हेतुओं कारण से अपनी रक्षा की चेष्टा नहीं करता ॥ ५ ॥

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत । गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत । एतद्वै तत् ॥६॥

अ०—(यः) सदसद्विवेकी मुमुक्षुः पुरुषो जीवात्मा (अद्भ्यः) अप्सहितपञ्चभूतेभ्यः (पूर्वम्) (अजायत) प्रादुर्बभूव तम् (तपसः) ज्ञानादिरूपाद्ब्रह्मणः (पूर्वं,जातम्) जगत्सर्जनाय प्रकटम् (व्यपश्यत) विशेषतया पश्यति जानाति (यः) यश्च (गुहाम्) बुद्धावन्तःकरणे (प्रविश्य) (तिष्ठन्तम्) (भूतेभिः) पंचभूतैः सहावस्थितं परमेश्वरम् (व्यपश्यत) विपश्यति तदाकारचेतास्तमेव प्रतिक्षणं ध्यायति । (एतद्वै तत्) यद्विद्वान् विपश्यति तदेतदेव ब्रह्मात्मतत्त्वं बोद्धव्यम् ॥

भा०—सर्गारम्भे परमात्मा सर्वं निर्मातुमादावीक्षतइत्येतत्सर्वस्मात्पूर्वं तस्य प्राकट्यम् । ततः पश्चात्तमोनुदः प्रकाशो जायते

Aditi — Hiranyagarbha is here called Aditi because soul enjoys of the whole universe.

Prana — Hiranyagarbha — The cosmic life.

ततोऽखिलं जगन्निर्माय तस्मिन्नन्तर्यामितया प्रविश्य तिष्ठति तं जीवात्मा सर्वभूतैः सहोवस्थितं स्वान्तःकरणे पश्यति । एतदेव तस्य ज्ञानं विदुषा कार्यमिति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—[यः] जो सत्यासत्य का विवेक करने वाला मुमुक्षु जीवात्मा [अद्भ्य] जल सहित पांच भूतोंसे [पूर्वम्] पहिले ही [अजायत] प्रकट हुआ उस [तपसः] ज्ञानादि स्वरूप ब्रह्मा से (पूर्वम्) पहिले (जातम्) जगत्को उत्पन्न करने के अर्थ प्रकट हुए परमेश्वर को [व्यपश्यत] विशेष कर देखता है अर्थात् जानता है और [यः] जो विद्वान् [गुहाम्] बुद्धि में [प्रविश्य] प्रवेशकर [तिष्ठन्तम्] स्थित परमात्मा को [भूतेभिः] पंचभूतमय शरीर वा संसार के साथ अवस्थित जानता है अर्थात् एकाग्रचित्त होकर प्रतिक्षण उसी का ध्यान करता है [एतद्वैतत] । वह ब्रह्म यही है जिसको विद्वान् लोग ही जानते हैं ।

भा०—सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा सब को रचने के अर्थ पहिले अनुसन्धान करता है यह सब से पहिले उस को प्रकटता है तिस पीछे अन्धकार नाशक प्रकाश उत्पन्न होता तिस पीछे सब जगत् को बना उसमें अन्तर्यामी रूपसे प्रवेशकर स्थित है । उस को जीवात्मा सब भूत पृथिव्यादि के साथ स्थित अपने अन्तःकरण में देखता है यही उस का ज्ञान विद्वान् को करना चाहिये ॥ ६ ॥ Aditi or the soul of God,

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत ।
एतद्वैतत् ॥७॥

अ०—(या) (देवतामयी) सर्वदेवात्मिका दिव्यज्ञानप्रकाशस्वरूपा (अदितिः) शब्दादिविषयाणामदनाददितिः (प्राणेन) हिरण्यगर्भरूपेण परब्रह्मतः (सम्भवति) (या) (भूतेभिः) भौतिकशरीरेण पञ्चमहाभूतैर्वा समन्विता (व्यजायत) उत्पद्यते ताम् (गुहाम्) अन्तःकरणे (प्रविश्य) व्यष्टिरूपेण [तिष्ठन्तीम्] विद्वान् जानीयात [एतद्वैतत्] तदेतद्ब्रह्महिरण्यगर्भदेवतारूपेणावस्थितं ज्ञेयम् ॥

भा०—हिरण्यगर्भरूपेण याऽखण्डनीया देवतोत्पन्ना या भूतैः सहिता बुद्धौ प्रविष्टा व्यज्यते तदपि ब्रह्मणएवैकं रूपं विज्ञेयम् ॥७॥

भाषार्थः—(या) जो (देवतामयी) सब देवोंकी समष्टि उत्तमज्ञान प्रकाशरूप (अदितिः) शब्दादि विषयों का अदन ग्रहण करने से अदिति देवता (प्राणेन) हिरण्यगर्भरूप परब्रह्म से (सम्भवति) उत्पन्न होती (या) जो देवता (भूतेभिः) भौतिक शरीर के साथ वा पांच महाभूतों से युक्त (व्यजायत) प्रकट होती उस (गुहाम्) अन्तःकरणमें (प्रविश्य) प्रवेश कर (तिष्ठन्तीम्) व्यष्टिरूप से ठहरी हुई देवता को जो विद्वान् जानता है (एतद्वै तत्) वही ब्रह्म हिरण्यगर्भदेवतारूप से अवस्थित होता जानो ॥

भा०—हिरण्यगर्भरूपसे जो देवता प्रकट होती जो अन्तःकरण में प्रविष्ट भूतों के साथ शरीर रूप से उत्पन्न होती वह भी ब्रह्म का ही एक रूप जानना चाहिये ॥ ७ ॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइव सुभृतो गर्भिणीभिः। दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः।एतद्वैतत्॥८॥

अ०—(अरण्योः) अधियज्ञे द्वयोः काष्ठयोर्मध्ये (निहितः) अन्तर्व्याप्तो यथा मन्थनेन (अग्निः) निस्सरति तथा (जागृवद्भिः) सत्त्वगुणस्थैः। सत्त्वं जागरणकारणमिति सुश्रुते (हविष्मद्भिः) ऋत्विग्भिर्ध्यानभावनातत्परैः (मनुष्येभिः) मनुष्यैः (जातवेदाः) जातं वेदो धनं वेदरूपं ज्ञानं वाऽस्मादिति परमेश्वरो ध्याननिर्मथनाभ्यासेन द्रष्टव्यः (गर्भिणीभिः) (सुभृतः) सुष्ठु धृतः (गर्भइव) धारणीयः (दिवेदिवे) प्रतिदिनं वेदमन्त्रपाठेन तदर्थानुसन्धानेन च (ईड्यः)स्तोतव्यः (एतद्वैतत्) एतदेव ब्रह्मज्ञातव्यमस्ति ॥

भा०—यथाऽरणीद्वये व्याप्तोऽप्यग्निर्मन्थनमन्तरेण न निस्सरति तथैवान्तःकरणे व्याप्तोऽपि जगदीश्वरो योगाभ्यासेन विना न प्रकटो भवति। यथा नार्यो गर्भाशये गर्भं विज्ञाय प्रतिदिनं तद्गतमानसा गर्भं धरन्ति

पुष्णन्ति च तथैव जिज्ञासुभिर्ध्यानयुक्तैः सत्त्वगुणप्रधानचेतोभिर्भूत्वाऽस्मद्धृद्यवस्थित ईश्वरइति मत्वा विस्मृतिं विहाय धारणीयः। अहर्निशं स्तोतव्यउपास्यश्च यश्चैवमध्यात्मनि चाग्निनामरूपाभ्यां यत्तत्त्वं प्रतीयते तद्ब्रह्मैव बोध्यम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—जैसे (अरण्योः) यज्ञ में दो लकड़ियों के बीच (निहितः) भीतर व्याप्त भी (अग्निः) अग्नि मथने से निकलता है वैसे (जागृवद्भिः) तमोगुण के कार्य निद्रा आलस्य प्रमाद से रहित सत्व गुण में स्थित (हविष्मद्भिः) ध्यान की भावना में तत्पर ऋत्विज् लोग वा योगी (मनुष्येभिः) मनुष्यों को (जातवेदाः) वेदरूप ज्ञान वा धन जिस से उत्पन्न हुआ ऐसा अग्नि वा परमेश्वर बार २ ध्यान के अभ्यास से देखने योग्य है (गर्भिणीभिः) गर्भवती स्त्रियां जैसे (सुभृतः) अपने गर्भ को अच्छे प्रकार स्मरण रख के धारण करतीं वैसे धारण करने योग्य और (दिवे दिवे) प्रति दिन वेद मन्त्रों के पाठ वा अर्थ विचार से (ईड्यः) स्तुति करने योग्य है (एतद्वै तत्) इसी को ब्रह्म ज्ञान का बड़ा साधन जानना चाहिये ॥

भा०—जैसे दो अरणियों में व्याप्त भी अग्नि विना मथे नहीं निकलता वैसे ही अन्तःकरण में व्याप्त भी परमेश्वर योगाभ्यास किये विना प्रकट नहीं होता। जैसे स्त्रियां गर्भाशय में गर्भ को जान के प्रति दिन उस में चित्त रखतीं और यत्न से धारण पोषण करती हैं वैसे ही जिज्ञासु ध्यानयुक्त सत्वगुण में ही जिन का चित्त स्थिर है उन पुरुषों को उचित

है कि हमारे हृदय में अवस्थित ईश्वर है ऐसा मानके सदा स्मरण रक्खें कि हमारा पेट ईश्वर के बिना शून्य नहीं ऐसे दिन रात धारण कर स्तुति वा उपासना करें अर्थात् यज्ञों में तथा शरीरों में अग्निनाम रूप से जो तत्त्व प्रतीत होता है वही ब्रह्म है जिसे तुम नचिकेता ने पूछा था ॥ ८ ॥

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।
तन्देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ।
एतद्वै तत् ॥९॥

अ०—(सूर्यः) (यतः) यस्मात्प्राणात् (च) (उदेति) उत्तिष्ठति (यत्र, च) यस्मिन्नेवाहन्यहनि (अस्तम्) निम्लोचनम् (गच्छति) (तम्) प्राणमात्मानम् (सर्वे) (देवाः) अधिदैवतमग्न्याद्योऽध्यात्मं वागाद्यभिमानिनश्च (अर्पिताः) प्राप्तास्तदाधारास्तिष्ठन्तीति यावत् । स प्राणोऽपि ब्रह्मात्मकएवास्ति । स्वार्थे णिच् (उ) (तत्) तत्सर्वात्मकं ब्रह्म (कश्चन) कश्चिदपि (न) (अत्येति) तदात्मकतामतीत्य तदन्यत्वं नकोऽपि गच्छति (एतद्वै तत्) ॥

भा०—यः सूर्यादिलोकलोकान्तराणामुदयास्तादिनियतक्रियाणां नियामकः कारणम् ।

तदाश्रयेणैव चराचरं जगत्स्वस्वनियमान्न विचलति तदेतदेव ब्रह्म विज्ञातव्यं यत्त्वया पृष्टमिति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—[सूर्यः] सूर्यलोक [यतः] जिस कारणात्मक प्राणशक्ति से [च] ही [उदेति] उदय को प्राप्त होता [यत्र, च] और प्रतिदिन जिसमें [अस्तम्] लीन [गच्छति] हो जाता है [तम्] उस प्राणनाम रूप आत्मा को [सर्वे] सब [देवाः] अधिदेव पक्षमें अग्नि आदि तथा अध्यात्म पक्षमें वाणी आदि के अभिमानी देव [अर्पिताः] प्राप्त हैं अर्थात् उसके आधार पर स्थित हैं [उ] और [तत्] उस सर्वात्मक ब्रह्म का [कश्चन] कोई [न, अत्येति] उलंघन नहीं करता अर्थात् तदात्मकता को छोड़ के उससे भिन्न रूप कोई नहीं हो सकता (एतद्वैतत्) इसी को ब्रह्म जानो ॥

भा०—जो सूर्यादि लोक लोकान्तरों के उदय अस्त आदि नियत कामों का नियन्ता कारण है उसी के आश्रय से जड़ चेतन सब जगत् अपने २ नियम से चलायमान नहीं होता उसी ब्रह्म को जानना चाहिये जिस को तुम नचिकेता ने पूछा था ॥ ९ ॥

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥१०॥

अ०—(यत्, एव) ब्रह्म (इह) अस्मिन् जन्मनि शरीरे प्रत्यक्षे स्थूले च जीवरूपेण देहादीनां पालकं धारकं प्रकाशकं चा-

स्ति (तत्,अमुत्र) तदेव जन्मान्तरेषु सूक्ष्मे शरीरे च (यत, अमुत्र) संसारस्थसर्वधर्म-वर्जितं नित्यविज्ञानघनस्वभावं निराकार-ममरमजरं परोक्षं ब्रह्म (तत, अनु, इह) तदेव मनुष्यपशुपक्ष्याद्युपाधिषु जीवनामरू-पाभ्यामवस्थितमस्ति (यः) पुरुषः (इह) ब्रह्मणि (नानेव) भिन्नत्वमिव (पश्यति) (सः) (मृत्योः) (मृत्युम्) (आप्नोति) मुहुर्मुहुर्जन्ममरणे एवाप्नोति ॥

भा०—यच्चेतनमात्मतत्त्वमिह मर्त्यलोके मनुष्यपशुपक्षिकीटपतङ्गस्थावरादिषु चिदा-नन्दरूपेण सर्वं चेतयते नियमयति वा तदे-व स्वर्गादिपरोक्षलोकेष्वपि देवादिनामरूपा-भ्यां तत्रत्यान् चेतयते नियमयति वा । अ-र्थात् यत्प्रत्यक्षं तदेव परोक्षं यत्स्थूलं तदेव सूक्ष्मं बोध्यम् । जीवादिरूपेण यो भिन्नं प-श्यति नासौ मुच्यते ॥१०॥

भाषार्थः—(यत,एव) जो ही ब्रह्म (इह) इस जन्म में वा स्थूल प्रत्यक्ष शरीरमें जीवरूप से देहेन्द्रियादि का धारण पालन वा प्रकाश करने वाला है (तत,अमुत्र) वही जन्मा-न्तरों में तथा सूक्ष्म और अति सूक्ष्म कारण शरीरों में है (यत,अमुत्र) जो परोक्ष में संसारस्थ सब धर्मों से वर्जित

नित्य विज्ञान घन स्वभाव निराकार अजर अमर परोक्ष ब्रह्म है (तत्) वही (अनु, इह) यहां मनुष्य पशु पक्षी आदि उपाधियों में जीव नाम रूपों से अवस्थित है (यः) जो पुरुष (इह) इस ब्रह्ममें (नानेव) भिन्नता को (पश्यति) देखता है कि जीव तथा ईश्वर स्वभाव से ही पृथक् २ हैं (सः) वह (मृत्योः) मृत्यु से (मृत्युम्) मृत्यु को (आप्नोति) वार २ पाता है अर्थात् मुक्त नहीं होता ॥

भा०—जो चेतन आत्मतत्त्व इस मर्त्यलोक में मनुष्य पशु पक्षी कीट पतङ्ग और स्थावरादि में व्याप्त सच्चिदानन्द रूपसे सब जड़ोंको चेतन करता वा नियममें चलाता है वही स्वर्गादि परोक्ष लोक में भी देवादि नाम रूपों से स्वर्गादिस्थ प्राणियोंको चेतन करता वा नियम बद्ध चलाता है। अर्थात् जो प्रत्यक्षमें है वही परोक्ष में है जो स्थूल है वही सूक्ष्म है अर्थात् जो मनुष्य जीवादि रूप को ईश्वर से भिन्न देखता है वह मुक्त नहीं हो सकता ॥१०॥

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन । मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥११॥

अ०—(इदम्) उक्तप्रकारेण सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यमेकमद्वैतं ब्रह्मेति (मनसैव) शास्त्रसंस्कारेण शुद्धया सूक्ष्मप्रज्ञयैव (मनोऽत्रबुद्धिरित्यभिप्रेतम् । नसंकल्पविकल्पात्मिका वृत्तिः) (आप्तव्यम्) (इह) ब्रह्मणि (किंचन) किमपि (नाना) प्रकारान्तरम् (नास्ति) (यः) (इह) (नानेव)

(पश्यति) (सः, मृत्योः, मृत्युम्, गच्छति) ॥

भा०—मनसैवेदमेकरसं सर्वस्मिंस्तत्तन्नामरूपैर्विद्यमानं ब्रह्म बोद्धव्यं नानात्वकारिकाया अविद्याया निवृत्तत्वादल्पतरमप्यनेकत्वं ब्रह्मणि न विद्यते । यस्त्वविद्यादृष्टिं न मुञ्चति किन्तु ब्रह्मणि नानात्वं जीवादिरूपेण पश्यति स जन्ममरणप्रवाहे पतत्येव ॥ ११ ॥

भावार्थः—(इदम्) उक्त प्रकार से सजातीय विजातीय स्वगत भेद जिसमें नहीं, कोई द्वितीय ईश्वर नहीं है, विजातीय जीव वा प्रकृति भी स्वतन्त्र कोई नहीं तथा स्वगत भेद भी जिसमें नहीं ऐसा एक अद्वैत ब्रह्म है इस प्रकार ब्रह्मका (मनसैव) शास्त्राभ्यास से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ही (आसव्यम्) निश्चय करना चाहिये कि (इह) इस ब्रह्ममें [किंचन] कुछ भी [नाना] प्रकारान्तर (नास्ति) नहीं है [यः] जो पुरुष [इह] इस एक ब्रह्ममें [नानेव] अनेकता को [पश्यति] देखता है [सः, मृत्योःमृत्युम्, गच्छति] वह मृत्यु से फिर मृत्यु को प्राप्तहोता है ॥

भा०—सब वस्तुओं में उस २ नाम रूप से विद्यमान एक रस ब्रह्मको मनसे ही जानना चाहिये, भेदकारिणी अविद्याके निवृत्त होजाने से ब्रह्ममें अत्यल्प भेद भी नहीं दीखता । जो पुरुष अविद्या दृष्टि को नहीं छोड़ता किन्तु जीवादि रूप से ब्रह्ममें अनेकता को देखता है वह मनुष्य जन्म मरण से नहीं छूट सकता ॥११॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति । ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ॥१२॥

अ०—निर्मलदर्पणे रूपमिवास्मिन्नेव शुद्धे शरीरस्थान्तःकरणे परमात्मोपलभ्यत इत्युक्तम् । स कस्मिन् प्रदेशे तिष्ठतीत्युच्यते (मध्ये) (आत्मनि) शरीरे (अङ्गुष्ठमात्रः) अङ्गुष्ठपरिमाणं हृदयरूपं वेश्म यत्र लिङ्गशरीरेण साकं चिदाभासरूपो जीवस्तिष्ठति तदेव परमात्मनःस्वरूपमनोऽङ्गुष्ठमात्रस्थानोपलभ्यत्वादङ्गुष्ठमात्रइत्युच्यते (पुरुषः) सर्वत्र पूर्णो व्याप्तः (तिष्ठति) (भूतभव्यस्य) अतीतानागतसर्ववस्तुजातस्य (ईशानः) अध्यक्षोऽस्ति (ततः) तस्मादात्मनः कोऽपि (न विजुगुप्सते) न ग्लायति दौर्मनस्यं वा न भवति तज्ज्ञानस्य दुःखवारकत्वात् (एतद्वै, तत्) यत्त्वया पृष्टं तदेतदेव ब्रह्मास्तीति विजानीहि॥

भा०—योऽतीतानागतसर्ववस्तूनामध्यक्षः परमेश्वरः स एव दर्पणवत्स्वच्छे बुद्धिज्योतिष्यङ्गुष्ठमात्रपरिमितहृदये लभ्यत्वादङ्गुष्ठ-

He is verily etc — He exists immutably through times past, future and present.

मात्रइत्युच्यते । सएवाभासरूपेण जीवोऽस्ति ल
ये जानन्तिनते ग्लायन्ति किन्तुप्रमोदन्त्येव॥१२॥

भावार्थः—निर्मल दर्पणमें जैसे रूप दीखता है वैसे इसी शरीरस्थ शुद्ध अन्तःकरण में परमात्मा का ज्ञान होता यह पहिले कई वार कहा है वह शरीर के किस स्थल में रहता है सो कहते हैं:—(अंगुष्ठमात्रः) अंगूठेकी बराबर हृदयरूप घर में स्थित अर्थात् वहां लिङ्ग शरीर सहित चिदाभासरूप जीवात्मा रहता है वही परमात्मा का स्वरूप है इस लिये अंगुष्ठमात्र स्थान में प्राप्त होने से अंगुष्ठ मात्र कहा गया [पुरुषः] सर्वत्र परिपूर्ण व्याप्त परमात्मा [आत्मनि] [मध्ये] शरीर के बीच में [तिष्ठति] विराजमान है वह [भूतभव्यस्य] भूत भविष्यत्में होने वाले सब पदार्थोंका [ईशानः] स्वामीहै [ततः]उस आत्मासे कोई [न,विजुगुप्सते] ग्लानिको प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसका जानना दुःख नाशक है इस कारण किसी को दुःख नहीं होता । [एतद्वैतत्] जिस को तुम नचिकेता ने पूछा था वह यही ब्रह्म है ऐसा तुम जानो ॥

भा०—जो भूत भविष्य में होने वाले सब वस्तुओं का स्वामी परमेश्वर है वही दर्पण के तुल्य स्वच्छ प्रकाशमान अंगुष्ठ परिमित हृदयस्थ बुद्धि में प्रतिबिम्बित होने से प्राप्त होने योग्य अंगुष्ठ मात्र कहाता है । वही चिदाभासरूप जीव है उस आत्मा को जानने वालों को ग्लानि न होकर प्रसन्नता होती है ॥१२॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य सएवाद्यसउश्वः ।
एतद्वै तत् ॥१३॥

अ०—[अङ्गुष्ठमात्रः] सएवाङ्गुष्ठमात्रस्थानीयः (पुरुषः) पुरि ब्रह्माण्डे विशेषेण शरीरैकदेशे हृदये वा शयानो विद्यमानो जीवाभिन्नः परमेश्वरः (अधूमकः) अधूमकं धूमरहितं निर्मलम्। लिङ्गव्यत्ययः [ज्योतिरिव] ज्ञानप्रकाशमयः [भूतभव्यस्य] [ईशानः] [सएव] [अद्य] सर्वाध्यक्षः [स,उ,श्वः] स एवागामिनि दिवसेऽपि सर्वस्वामी भविष्यति (एतद्वै तत्) तदेतदेव ब्रह्मास्ति॥

भा०—यथा लोके राज्याद्यधिकारिणां स्थितिरनित्याऽस्ति कश्चिन्म्रियते तदाऽन्योऽध्यक्षस्तत्र तिष्ठति निर्बलं पराजित्य बलवान्वाधिकारी भवति । एवं सर्वाधिकारिणां व्यत्ययो दृश्यते । तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूपस्य सदैकरसस्य साम्यातिशयविनिर्मुक्तैश्वर्यवतस्सर्वोपरि बलवतः परमेश्वरस्याधिकारे न कश्चित्कदाचित्तिष्ठति स्थातुमर्हति वा स्वकार्यस्य सर्वथा स्वयमेवाध्यक्षः सोऽस्ति प्रेते शरीरे योऽवशिष्टः सएव जीवेश्वरयोरभेदेन सदैक एवात्माऽस्ति ॥१३॥

भावार्थः (अङ्गुष्ठमात्रः) वही अंगूठा भर स्थानमें प्राप्त होने योग्य (पुरुषः) ब्रह्माण्ड वा विशेषकर शरीरस्थ हृदय में विद्यमान जीवसे अभिन्न परमेश्वर (अधूमकः) धूम रहित निर्मल (ज्योतिरिव) ज्योति के समान ज्ञान प्रकाश स्वरूप (भूतभव्यस्य) भूतभविष्यत् का (ईशानः) स्वामी (स एव) (अद्य) वही आज सब का अध्यक्ष है (स, उ, श्वः) और वही कल रहेगा (एतद्वै तत्) वह यही ब्रह्म है ॥

भा०—जैसे लोक में राज्याधिकारियों की स्थिरता अनित्य है कोई मर जाता है तो उस के अधिकार पर दूसरा नियत किया जाता अथवा निर्बल राजा को बलवान् हराके अधिकारी बन बैठता है इसी प्रकार संसार में सब अधिकारों की अदली होती रहती है वैसे ज्ञानप्रकाश स्वरूप सदा एकरस सर्वोपरि ऐश्वर्यवान् तथा बलवान् परमेश्वर के अधिकार पर कभी कोई स्थित नहीं होता तथा न होने योग्य है अर्थात् वह एक ही स्वयं सदा अपने कामों का अधिष्ठाता है मनुष्य के मरजाने पर जो आत्मा नहीं मरता, किन्तु विद्यमान रहता है, वही जीव और वही ईश्वर सदा एक रूप एक ही आत्मा है ॥ १३ ॥

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥ १४ ॥

अ०—(यथा) (दुर्गे) दुर्गमे विषम प्रदेशे (वृष्टम्) (उदकम्) (पर्वतेषु) निम्नप्रदेशेषु (विधावति) (एवम्) (धर्मान्)

acquires the self — the self of the sage who when purged of its dross, through light & knowledge becomes one with the immense Brahman.

धर्मितः (पृथक्) (पश्यन्) (तानेव) धर्मानेव (अनुविधावति) पश्चाद्गच्छति ॥

भा०—द्वैतभेददर्शिनो निन्दां दर्शयति यथोच्चप्रदेशे वृष्टं जलं पर्वतप्रदेशेषु विलीयते तथैव नानाभेदहेतून् धर्मानेकात्मतः पृथक् विजानन् तानेव शरीरभेदान्पुनःपुनराप्नोति संसारान्न मुच्यतइत्याशयः ॥ १४ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (दुर्गे) दुर्गम विषम ऊंचे नीचे स्थलमें (वृष्टम्) वर्षा (उदकम्) जल (पर्वतेषु) नीचे स्थलों में(विधावति) भागता २ नष्ट हो जाता है [एवम्] इसी प्रकार (धर्मान्) धर्मों वा गुणों को आत्मासे (पृथक्) भिन्न द्वैत रूपसे (पश्यन्) देखता हुआ (तानेव) उन्हीं भेदक धर्मों का अनुविधावति] अनुगामी होता अर्थात् शरीर भेदोंमें पुनः २ उत्पन्न होते हैं, धर्मों को भिन्न देखना मोक्षका बाधक है ॥

भा०—द्वैतवादी वा भेदवादी की निन्दा दिखाते हैं—जैसे ऊंचे पहाड़ पर वर्षा जल नीचे के भागों में पड़ता २ नष्ट हो जाता है। वैसेही अनेक भेद होने के कारणों को एक आत्म वस्तु से पृथक् जानता हुआ उन्हीं अनेकविध योनियों को वार २ प्राप्त होता है अर्थात् संसार से मुक्त नहीं होता अर्थात् भेदकारक हेतु स्वतन्त्र आत्मा से भिन्न स्वाधीन वस्तु नहीं हैं ॥ १४ ॥

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति । एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥१५॥

अ०—हे (गौतम) गौतमवंशोत्पन्न नचिकेतः (यथा) (शुद्धे) प्रसन्ने (शुद्धम्) (आसिक्तम्) समन्तात् सिक्तम् (उदकम्) (तादृगेव) शुद्धमेव (भवति) (एवं, विजानतः, मुनेः) एकत्वमद्वैतमभेदं विज्ञातवतोऽल्पभाषिणो ज्ञानिनः (आत्मा) एकत्वमापन्नः (भवति) जायते ॥

भा०—उपाधिकृतं भेदज्ञानं यस्य नष्टं यश्च विशुद्धविज्ञानघनैकरसमद्वितीयमात्मानं पश्यति तस्य शुद्धजलयोः सम्पर्कवत्परमात्मन्येकत्वं भवति न स पुनरावर्त्तते ॥१५॥

॥ इति चतुर्थी वल्ली समाप्ता ॥

भावार्थः—हे (गौतम) गौतम वंशी नचिकेता (यथा) जैसे (शुद्धे) शुद्ध जलमें (आसिक्तम्) अच्छे प्रकार सींचा हुआ(शुद्धम्) शुद्ध निर्मल (उदकम्) जल (तादृगेव) शुद्ध एकात्मक जलही (भवति) हो जाता है (एवम्) इसी प्रकार एक अद्वैतरूप अभेदको (विजानतः) जानते हुए (मुनेः) अल्पभाषी ज्ञानी पुरुष का (आत्मा) आत्मा एक अद्वैत भाव को प्राप्त (भवति) हो जाता है ॥

भा०—शरीर सम्बन्धिनी उपाधि से होने वाला जिसका भेदज्ञान नष्ट होगया और जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप एकरस अद्वैत आत्मा को देखता है। दो शुद्ध जलों का ठीक एकाकार मेल होजाने के तुल्य उस मनुष्य को परमात्मा के साथ एक-

The Self 1-5.

ता हो जाती है उसकी पुनरावृत्ति फिर नहीं होती ॥ १५ ॥

यह चौथी वल्ली समाप्त हुई।

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः । अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते एतद्वै तत् ॥ १ ॥

अ०—अथ पञ्चमी वल्ली प्रारभ्यते तस्यामादितः प्रत्यगात्मविज्ञानं वक्तुं प्रक्रमते (अवक्रचेतसः) अवक्रमकुटिलं चेतो विज्ञानमस्य तथाभूतस्य (अजस्य) कुतश्चित्कारणादनुत्पन्नस्यानादेर्नित्यात्मनः (एकादशद्वारम्) शिरसि सप्त पायूपस्थनाभयस्त्रोऽप्यधस्थानि मूर्द्धन्येकमित्येकादशच्छिद्रसम्पन्नम् (पुरम्) पत्तनमिव राजस्थानीयं भोगसाधनं स्थूलं शरीरमस्ति (अनुष्ठाय) यस्योक्तविधं पुरं तं पुरस्वामिनं परमेश्वरं ध्यात्वा सर्वैषणाविनिर्मुक्तः सन् सर्वभूतस्थं समं ध्यात्वा (न, शोचति) ऋणत्रयात् (विमुक्तश्च) शरीरादपि (विमुच्यते) पुनर्न जायते (एतत्, वै, तत्) एतदेव त्वया पृष्टमात्मतत्त्वं विद्धि ॥

भा०—यथा यस्मिन् परितःकृतप्राकारे प-

त्तने गमनागमनाय द्वाराणि भवन्ति तत्सम्यग्विज्ञानसम्पन्नः पुरस्वामी राजा राजधर्मपुरस्सरं संसेवते धर्मानुकूलवर्त्ती सन् शोकाकुलो न जायते तथैव परित्यक्तमिथ्याज्ञानः सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कार्यसाधकैकादशछिद्रेन्द्रियसहितं नगरस्थानीयं शरीरमाश्रमत्रये धर्मानुकूलं संसेव्य चतुर्थाश्रमस्थः पुरुषो तत्त्वं जानन् न शोचति शरीरं विहाय मुक्तश्च भवत्येतदेव ब्रह्मात्मतत्त्वम् ॥ १ ॥

भावार्थः—अब पांचवीं वल्ली का प्रारम्भ किया जाता है उसके प्रारम्भ से शरीर में जीवरूप से स्थित अन्तरात्माके जानने का उपाय कहते हैं (अवक्रचेतसः) जिसका कुटिल वा उलटा ज्ञान नहीं उस (अजस्य) किसी उपादान कारण से न उत्पन्न होने वाले अनादि नित्य आत्मा राजा के (एकादशद्वारम्) ग्यारह दरवाजे (आंख के दो नाक के दो कान के दो एक मुख का, गुदा, लिङ्ग, दो नीचे के एक नाभि एक मस्तक में ये ग्यारह छिद्र रूप शरीर में द्वार हैं) वाले (पुरम्) शरीर रूप नगरको (अनुष्ठाय) उक्त प्रकार का नगर वाले राजमहल के स्वामी परमेश्वर का ध्यान करके सब प्रकार की वासनात्मक इच्छाओं से मुक्त हुआ अपने को सब में एक रूप से स्थित जान के (न, शोचति) शोच नहीं करता और ऋषि देव और पितृ सम्बन्धी तीनों ऋणोंसे (विमुक्तश्च) छूटा अर्थात् तीन आश्रममें धर्मोंके सेवन से तीनों ऋण चुका के शरीरसे भी (विमुच्यते) छूट जाता है (एतद्वै तत्). सो यही शरीरस्थ आत्मा ब्रह्म है ॥

mountains; the Yoga, the great.
present nature of All [illegible] is essential here.
water — as aquatic animals & insects
earth — form of plants, trees etc.

भा०—जैसे जिस नगर में सब ओर से परकोटा खिंचा हो और आने जाने के लिये कई दरवाजे नियत कर दिये जावें उसको सम्यग् ज्ञान शील नगराधीश राजा राजधर्म के अनुकूल सेवन करे वह राजा धर्मानुकूल वर्त्ताव करने से शोकातुर नहीं होता वैसे ही जिसने मिथ्याज्ञान छोड़ दिया वह तत्वज्ञानी पुरुष कार्यों के सिद्ध करने वाले ११ छिद्रों (सात शिर में दो नीचे इस में ९ छिद्र तो प्रसिद्ध ही हैं १ नाभि जिसके द्वारा रस पहुंच कर गर्भ का शरीर बनता है। १ छिद्र मूर्धा में होता है वहां गर्भावस्था में सूक्ष्म त्वचा पुर जाती है इस दो वर्ष तक के बच्चों का वही स्थल मूर्द्धा में फड़कता रहता है वही द्वार है वे ११ छिद्र हैं। स्त्री के उपस्थ में दो छिद्र होते हैं १ मूत्र का एक जनने का उसके १२ होंगे यहां पुरुष के ११ छिद्र कहे हैं) वाले नगरस्थानी शरीर का तीन आश्रमोंमें धर्मानुकूल सेवन कर पुरुष चौथे संन्यास आश्रम में शोकातुर नहीं होता और शरीर को छोड़के मुक्त हो जाता है यही देहस्थ आत्मा है ॥ १ ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥ २ ॥

the Self is all in all

अ०—अस्यैव शरीरस्थस्यात्मनः सर्वत्र स्थितिं दर्शयति (हंसः) हन्ति शरीराच्छरीरान्तरं गच्छतीति हंसः। औणादिकः सः प्रत्ययः (शुचिषत्) शुचावकाशे द्युलोकआ-

दित्यात्मना सीदति (वसुः) यो वसति मनुष्यादिशरीरेषु वासयति वा सर्वान् सः (अन्तरिक्षसत्) मध्यवर्त्तिन्यन्तरिक्षे यो वाय्वात्मना सीदति सः (होता) अग्निरूपेण सर्वगः (वेदिषत्) वेद्यां पृथिव्यां सीदति चराचररूपेण। इयं वेदिः परो अन्तःपृथिव्या इति वेदमन्त्रप्रामाण्याद्वेदिशब्देन पृथिवी गृह्यते। (अतिथिः) अतिथिवदादरणीयः सोमः (दुरोणसत्) दुरोणे गृहे कुट्यादौ सीदति यद्वा दुरोणे द्रोणकलशे सीदतीति दुरोणसत् (नृषत्) मनुष्यशरीरे सीदति (वरसत्) वरे श्रेष्ठे देवब्रह्मर्ष्यादिविग्रहे सीदति (ऋतसत्) ऋते यज्ञे सत्ये ब्रह्मणि वा सीदति (व्योमसत्) व्योम्नि--आकाशे तदात्मना सीदति (अब्जाः) अप्सु जलजन्तुमकरादिरूपेण जायते (गोजाः) गवि पृथिव्यां व्रीहियवघासादिस्थावररूपेण जायते (ऋतजाः) ऋताद्ब्रह्मणो जायत उत्पद्यते (अद्रिजाः) अद्रिभ्यः पर्वतेभ्यो नद्यादिरूपेण जायते (ऋतम्) स्वयमपि सत्यस्वरूपम् (बृहत्) सर्वकारणत्वान्महत्परिमाणम् ॥

भा०-आत्मानमेव सर्वात्मकं पश्येत् । सर्वस्मिन् ब्रह्माण्डे सर्ववस्त्वाकारेणाहमेवास्मीति ध्यायन् शोकमोहौ जहाति ॥ २ ॥

भाषार्थ–इसी पूर्वोक्त शरीरस्थ आत्मा की सर्वत्रस्थिति दिखाते हैं (हंसः) एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाने (शुचिषत्) पवित्र स्थल स्वर्गमें आदित्य रूप से स्थित होने (वसुः) मनुष्यादि योनियों में वसने वा सबको वसाने वाला (अन्तरिक्षसत्) मध्यवर्त्ती अन्तरिक्षमें वायु रूप से रहने (होता) अग्निरूप से सब में व्याप्त (वेदिषत्) चराचर जीवरूप से वेदिनाम पृथिवी में रहने (इयंवेदिः०)—इस मंत्र में वेदि शब्द पृथिवीका वाचक है इसलिये वेदि शब्दसे पृथिवी ली गई (अतिथिः) जिसके आने जानेकी तिथि नियत नहीं ऐसे अतिथि के तुल्य पूजनीय सोम (दुरोणसत्) अपने आश्रम कुटी आदि घरमें वा द्रोण कलशमें ठहरने (नृषत्) मनुष्य शरीर धारण करने (वरसत्) श्रेष्ठ देवता वा ब्रह्मर्षि आदिके शरीरमें रहने (ऋतसत्) यज्ञ वा सत्य ब्रह्ममें स्थिर होने (व्योमसत् आकाशमें अपने स्वरूप से ठहरने (अब्जाः) जलमें मगर-आदि जल जन्तु रूपसे उत्पन्न होने (गोजाः) वृक्ष वनस्पत्यादि वा व्रीहि यवादि रूप से पृथिवी में उत्पन्न होने और (ऋतजाः) ऋत नाम ब्रह्म का भी है उस से उत्पन्न (अद्रिजाः) पर्वतोंसे नदी आदिके रूपसे उत्पन्न होने वाला (ऋतम्) सत्यस्वरूप (बृहत्) सबका कारण होने से महाप्रभाव वाला है ॥

भा०—अपने को ही सर्व रूप से विद्यमान देखे । सब ब्रह्माण्डमें सब वस्तु स्वरूपसे मैं ही विद्यमान हूं ऐसा ध्यान करता हुआ शोक मोह को त्याग देता है ॥ २ ॥

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥३॥

अ०-यो जीवात्मा योगाभ्यासावसरे (प्राणम्) हृदिस्थितं प्राणवायुम् (ऊर्ध्वम्) (उन्नयति) (अपानम्) गुदेन्द्रियसंचारिणं वायुम् (प्रत्यक्) अधः (अस्यति) क्षिपति तम् (मध्ये) नाभिकण्ठयोर्मध्ये (आसीनम्) (वामनम्) वामं नित्यप्रशस्तं शुद्धं ज्योतिःस्वरूपं विद्यतेऽस्य स वामनः। पामादित्वान्नस्तद्धितः। एवंभूतमात्मानं प्रजा राजानमिव (विश्वे) सर्वे (देवाः) ज्ञानेन्द्रियाभिमानिनो देवाः (उपासते) सेवन्ते ॥

भा०—शारीर आत्मा यदा योगाङ्गानुष्ठानेन स्वरूपेऽवतिष्ठते तदा प्रत्यगात्मभूता इन्द्रियशक्तय आसनमध्यासीनं राजानमिव तमात्मानमन्तःकरणरूपे सदस्युपासते ॥ ३ ॥

भाषार्थः—जो जीवात्मा योगाभ्यास के समय (प्राणम्) हृदयमें रहने वाले प्राण वायु को (ऊर्ध्वम्) ऊपर ब्रह्माण्ड में (उन्नयति) आकर्षण करता (अपानम्) गुदाद्वारा नीचेको चलने वाले वायु को (प्रत्यक्) नीचे (अस्यति) फेंकता है उस (मध्ये) नाभी और कण्ठके बीच अन्तःकरणमें (आसीनम्) स्थित (वामनम्) प्रशस्त नित्य शुद्ध प्रकाशस्वरूप उक्त आत्मा

को (जैसे प्रजाजन राजा को वैसे) (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहार साधक इन्द्रियोंके अभिमानी देवता लोग (उपासते) सेवन करते हैं ॥

भा०—शरीरस्थ आत्मा जब यम, नियम, आसन प्राणायामादि योग के अवयवों के सेवन से अपने स्वरूप में स्थित होता है तब भीतर अन्तःकरण की ओर फिरी हुई इन्द्रियों की शक्तियां राजगद्दी पर बैठे राजा के तुल्य उस आत्माको अन्तःकरण रूप सभामें सेवन करते (अर्दलीमें हाज़िर रहते) हैं अर्थात् जितेन्द्रिय हो जाता है ॥ ३ ॥

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः । देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥ ४ ॥

अ०—(अस्य) (शरीरस्थस्य) (देहिनः) देहः शरीरमस्यास्तीति सम्बन्ध इनिः (विस्रंसमानस्य) भ्रंश्यमानस्यार्थात् (देहात्) कलेवरात् (विमुच्यमानस्य) (किम्) लक्ष्म (अत्र) (परिशिष्यते) न किमपीत्यर्थः । यस्य च भ्रंशो देहाद्विमोचनं वा न भवति (एतद्वैतत्) एतदेव ब्रह्मास्तीति बोध्यम् ॥

भा०—यदा जीवोऽस्माच्छरीरान्निस्सरति तदा तस्य सर्वाः प्राणेन्द्रियशक्तयस्तेन साकमेव बहिर्निस्सरन्ति न किमप्यत्र परिशिष्यते

यश्च विस्त्रंसनविमोचनाभ्यां पृथगवशिष्यते तदेव ब्रह्मास्तीति ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अस्य) इस (शरीरस्थस्य) शरीर में रहने वाले (देहिनः) शरीर के स्वामीके (विस्रंसमानस्य) पृथक् होते अर्थात् (देहात्) शरीर को (विमुच्यमानस्य) छोड़ते हुए जीवात्मा का (किम्) क्या चिन्ह (अत्र) इस शरीरमें (परिशिष्यते) शेष रह जाता है ? अर्थात् कोई नहीं और जिस को दुःखमें गिरना वा शरीर से पृथक् होना नहीं होता (एतद्वैतत्) वह यही ब्रह्म है सो जानना चाहिये ॥

भा०—जब मरण समय जीवात्मा इस शरीरसे निकलता है तब उसके इन्द्रिय और प्राणों की सब शक्ति उसके साथ ही निकल जाती हैं किन्तु शरीरमें चेतनका कोई चिन्ह शेष नहीं रह जाता और जिसको शरीर के संयोग वियोगसे दुःख नहीं पहुंचता वही ब्रह्म जानने योग्य है ॥ ४ ॥

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन । इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेता-वुपाश्रितौ ॥ ५ ॥

अ०-(कश्चन) (मर्त्यः) मरणधर्मा देहेन्द्रियसंघातो मनुष्यः (न, प्राणेन) (न, अपानेन) (जीवति) किन्तु (यस्मिन्) अन्तरात्मनि (एतौ) प्राणापानौ (उपाश्रितौ) तेन (इतरेण) प्राणापानाभ्यां भिन्नेनात्मना (जीवन्ति) देहेन्द्रियबुद्धिमनःसंघाता इति शेषः ॥

भा०-अज्ञा लौकिका जानन्ति वदन्ति च प्राणापाननिरोधएव देहिनां मरणमिति । अतएव ते निर्बीजसमाधिस्थान् योगिनोऽपि मृतान् ज्ञातुं शक्नुवन्ति तच्च मिथ्याज्ञानमिति । प्राणापाननिरोधेऽपि प्राणापानाधिकरणेन विद्यमानेनात्मना मर्त्यो जीवत्येव एतदेव परमात्मनो रूपम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(कश्चन) कोई (मर्त्यः) मनुष्य (न,प्राणेन) न प्राण से और (न,अपानेन) न अपानसे (जीवति) जीता है किन्तु (यस्मिन्) जिस अन्तरात्मा में (एतौ) ये दोनों प्राण अपान (उपाश्रितौ) आश्रित हैं (इतरेण) प्राण-अपान से भिन्न वर्त्तमान उस आत्मा की सत्ता से जड़ चेतन के संयोग से बने शरीर समुदाय (जीवन्ति) जीवित रहते हैं ॥

भा०—संसारी अज्ञ मनुष्य जानते वा कहते हैं कि प्राण अपान का बन्द होना ही मनुष्य का मरना है। इसी लिये वे निर्बीज समाधिस्थ योगियों को भी मरे मान ले सकते हैं सो मिथ्या ज्ञान है क्योंकि प्राणापान के बन्द होने पर भी उनके आधार विद्यमान आत्मा से मनुष्य जीता ही है यही अन्तरात्मा साक्षात् परमेश्वर है इससे भिन्न जीव कोई अन्य नहीं है ॥ ५ ॥

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् । यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥ ६ ॥

अ०—हे (गौतम) गौतमवंशावतंस नचिकेतः ! (हन्त) अनुकम्पायाम् (ते) तुभ्यम् (इदम्) प्रस्तुतम् (सनातनम्) (गुह्यम्) अधिकारिणएव त्वादृशे कस्मैचिद्दे कान्त उपदेश्यम् (ब्रह्म) (प्रवक्ष्यामि) उपदेक्ष्यामि त्वमेकाग्रमनाः शृणु (यथा, च) यस्याविज्ञानात् (मरणम्) (प्राप्य) (आत्मा) निरन्तरं देहाद्देहान्तरं गन्ता (भवति) तदपि त्वं शृण्विति वाक्यशेषः ॥

भा०-यद्यपि ब्रह्मज्ञानोपदेशं कर्त्तुं पूर्वत-एव भोदेवः प्रवृत्तस्तथाप्यनुकम्पायुक्तः पुन-राह-इदानीं सनातनस्य ब्रह्मणो ज्ञानमेव प्राधान्येन वक्ष्यामि यदविज्ञाय मनुष्यः संसा-रचक्रेऽनिशंभ्रमति तदपि वक्ष्यामि त्वं शृणु ।६॥

भावार्थः— हे (गौतम) गोतम कुल के दीपक (हन्त) कृपा करने योग्य नचिकेतः (ते) तेरे लिये (इदम्) इस (सनातनम्) सनातन (गुह्यम्) तेरे तुल्य किसी अधिकारी को ही उपदेश करने योग्य (ब्रह्म) ब्रह्म का (प्रवक्ष्यामि) उपदेश करूंगा तू एकाग्र चित्त होकर सुन (च) और मनुष्य (यथा) जैसे अर्थात् अपने स्वरूपको न जानने से (मरणम्) मरण को (प्राप्य) प्राप्त होकर (आत्मा) शरीर से शरीरान्तरको जाने वाला (भवति) होता है अर्थात् वार २ जन्म मरण प्रवाह में पड़ता है सो भी कहूंगा तुम सुनो ॥

भा०—यद्यपि ब्रह्मज्ञानका उपदेश करने को यमराज पहिले से ही प्रवृत्त हैं तो भी कृपायुक्त होकर फिर बोले कि अब मुख्य कर सनातन ब्रह्म का ज्ञान ही कहूंगा जिस को न जान कर संसार चक्र में मनुष्य प्रतिदिन भ्रमता है उस को भी कहूंगा तुम सुनो ॥ ६ ॥

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः । स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७ ॥

अ०-(अन्ये) ब्रह्मज्ञानविमुखाः (देहिनः) मनुष्याः (यथाकर्म) यादृशं यस्य कर्म यावच्च (यथाश्रुतम्) यादृशं यावच्च शास्त्रविज्ञानं लब्धं तादृशसंस्कारजन्यवासनारज्जुभिराकृष्यमाणाः केचित् (शरीरत्वाय) मनुष्यादिशरीरभावाय शरीरग्रहणार्थम् (योनिम्) शुक्रशोणितसंयुतम् योनिद्वारम् (प्रपद्यन्ते) प्राप्नुवन्ति (अन्ये) केचित् मानसपापकारिणः । मानसैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः । मनु० अ० १२ (स्थाणुम्) वृक्षादिस्थावरभावम् (अनुसंयन्ति) अनुगच्छन्ति ।

भा०—ये ब्रह्मज्ञानाय न प्रयतन्ते ते मूढा जन्मान्तरे पूर्वसंचितकर्मानुसारमुत्तम-

मध्यमनिकृष्टयोनीः प्राप्य दुःखान्येव भुञ्जते योनिमन्यइति कथनात्प्रतीयते यच्छुक्रशोणिताभ्यां सहैव गर्भाशये जीवः प्रविशति ॥७॥

भावार्थः—[अन्ये] ब्रह्मज्ञानी से अन्य [देहिनः] मनुष्य [यथाकर्म] जैसा वा जितना जिसका कर्म हो वा [यथाश्रुतम्] जैसा वा जितना शास्त्रज्ञान जिसको प्राप्त हुआ हो वैसे संस्कारों से हुई वासना रूप रस्सियों से बंधे खिंचे हुए [शरीरत्वाय] मनुष्यादि का शरीर धारण करने के लिये [योनिम्] वीर्य और रुधिर संयुक्त गर्भाशयको [प्रपद्यन्ते] प्राप्त होते हैं [अन्ये] और कोई मनसे पाप करने वाले अति निकृष्ट विचार के प्राणी [स्थाणुम्] वृक्षादि स्थावर योनियों को [अनु,संयन्ति] मरणानन्तर प्राप्त होते हैं ॥

भा०—जो लोग ब्रह्मज्ञान होने के लिये प्रयत्न नहीं करते वे मूर्ख पूर्व जन्मान्तरों में किये कर्मों के अनुसार उत्तम मध्यम निकृष्ट योनियोंको प्राप्त होके दुःख ही भोगते हैं। इसी मन्त्र में [योनिमन्ये०] कथनसे सिद्ध होता है कि शुक्र शोणित के साथ ही जीव गर्भाशय में प्रवेश करता है ॥ ७ ॥

य एष सुप्तेषु जागर्त्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन एतद्वै तत् ॥८॥

अ०—(यः, एषः) आत्मा (पुरुषः) पुरि ब्रह्माण्डे शयानो व्याप्तः (कामंकामम्) तं

तमभिप्रेतम् वीप्सायां द्विर्वचनम् (निर्मिमाण:) स्वप्ने कान्तादिरूपं विषयमविद्यया प्रकल्पयन् (सुप्तेषु) श्रोत्रादीन्द्रियेषु सुप्तेषु सत्सु (जागर्त्ति)स्वप्नान्पश्यति सुषुप्तौ च स्वसत्तया तिष्ठति (तदेव) (शुक्रम्) शुद्धम् (तद्ब्रह्म) सर्वस्माद्बृहद् गुह्यं ब्रह्म (तदेव) (अमृतम्) अविनश्वरम् (उच्यते) शास्त्रेषु इति शेषः (तस्मिन्) ब्रह्मणि (सर्वे) (लोकाः) पृथिव्यादयः (श्रिताः) (तत्) ब्रह्म (कश्चन) लोकः (नात्येति) नोल्लङ्घयति (एतद्वैतत्) एतदेव तद्ब्रह्मास्ति यत् त्वया पृष्टम् ॥

भा०—कर्मेन्द्रियेषु ज्ञानेन्द्रियेषु च सुप्तेषु स्वस्वविषयग्रहणादुपरतेषु स्वप्नावस्थायां सुषुप्तौ च जागर्त्ति चिद्रूपेणप्रकाशते स्वप्नांश्चाविद्ययाऽभिलषितान् पश्यति तन्नित्यशुद्धं सर्वाधारमचलनियमं नित्यमुक्तं साम्यातिशयविनिर्मुक्तस्वरूपं जीवाभिन्नं ब्रह्म कल्याणेप्सुना विज्ञातव्यम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(यः,एषः) जो यह आत्मा(पुरुषः) सब ब्रह्माण्ड में व्याप्त (कामं कामम्) उस २ अभीष्ट स्त्री आदि रूप विषय को (निर्मिमाणः) स्वप्न के समय अविद्या से

कल्पित करता हुआ (सुप्तेषु) श्रोत्रादि इन्द्रियों के सोनेपर (जागर्त्ति) जागता स्वप्नों को देखता और सुषुप्ति के समय अपनी सत्ता से ठहरता है (तदेव) वही (शुक्रम्) शुद्ध (तद्ब्रह्म) वही सब से बड़ा शुद्ध ब्रह्म (तदेव) वही (अमृतम्) शास्त्रों में अविनाशी रूप (उच्यते) कहा जाता है (तस्मिन्) उक्त ब्रह्ममें (सर्वे) सब (लोकाः) पृथिवी आदि लोक (श्रिताः) ठहरे हुए हैं (तत्) उसका (कश्चन) कोई लोक वा मनुष्य (न, अत्येति) उल्लंघन नहीं कर सकता (एतद्, तत्) यही वह ब्रह्म है जिसको तुम नचिकेता ने पूछा था ॥

भा०—कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के अपने २ विषय ग्रहण से हटजाने रूप सोजाने पर स्वप्न और सुषुप्ति के समय जो आत्मा अज्ञानसे अभिलषित विषयोंको देखता हुआ जागता है वह नित्य शुद्ध सब का आधार जिसका नियम अचल है नित्य मुक्त और जिसके तुल्य वा जिससे अधिक किसीका स्वरूप नहीं वह जीवसे सदा अभिन्न स्वरूप ब्रह्म कल्याणकी इच्छा वाले को जानने योग्य है ॥ ८ ॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ ९ ॥

अ०—(यथा) (एकः, अग्निः) विद्युत्स्वरूपः (भुवनम्) भवन्ति भूतानि यस्मिन्स्वयं वा भवत्युत्पद्यते कार्यरूपेण जायतइति भुवनं लोकम् (प्रविष्टः) प्रतिवस्तु व्याप्तः (रूपंरूपम्) यावद्वस्तुरूपम् (प्रतिरूपः) तत्तद्वस्तु-

स्वरूपः (बभूव) (तथा) (एकः) जीवेश्वरयोरभेदेनैकत्वम् (सर्वभूतान्तरात्मा) (रूपं रूपम्) (प्रतिरूपः) बभूव (च) सर्वस्थूलवस्तुभ्यः (बहिः) पृथगपि व्योमवद् व्याप्तः ॥

भा०-यथाऽग्निर्विद्युद्रूपेण सर्वस्थूलपदार्थेषु व्याप्तस्तत्तद्वस्तुरूपाद्भिन्नो न लक्ष्यतेऽपितु तत्तत्पदार्थरूपेणैव तत्रतत्रावस्थितोऽतिसूक्ष्मत्वात्पृथङ् न ज्ञायते तथैवात्मापि सर्वकार्यकारणवस्तुषु व्याप्तोऽतिसूक्ष्मत्वान्न दृश्यते तत्तत्पदार्थस्वरूपेणैव तस्मिंस्तस्मिन्नवतिष्ठते यत्र पदार्था न सन्ति तत्रापि परमात्मा व्याप्त आकाशवदनन्तत्वात् ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (एकः) एक ही (अग्निः) अग्नि (भुवनम्) सब प्राणियों के आधार वा स्वयं कार्यरूप से उत्पन्न होने वाले संसार में (प्रविष्टः) व्याप्त (रूपं रूपम्) प्रत्येक रूपवान् वस्तु के (प्रतिरूपः) तुल्य रूप वाला (बभूव) हो रहा है (तथा) वैसे (एकः) जीव ईश्वर का भेद न होने से एक (सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा (रूपंरूपम्) प्रत्येक रूपवान् पदार्थ के साथ (प्रतिरूपः) उसी के जैसे रूपवाला (बभूव) हो रहा है (च) और सब स्थूल पदार्थोंसे (बहिः) पृथक् भी आकाशके तुल्य व्याप्त है ॥

भा०—जैसे अग्नि विद्युत् रूप से सब स्थूल पदार्थों में व्याप्त भी उस २ वस्तु के रूप से भिन्न नहीं दीखता किन्तु उस २ पदार्थ के रूप से ही उस २ में स्थित अतिसूक्ष्म होने

से पृथक् नहीं जाना जाता वैसे ही परमात्मा भी सब कार्य कारण वस्तुओं में व्याप्त अति सूक्ष्म होने से नहीं दीखता किन्तु उस २ पदार्थ के रूप से उस २ में अवस्थित है और जहां पदार्थ नहीं वहां भी आकाश के तुल्य अनन्त होने से परमात्मा व्याप्त है ॥ ९ ॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १० ॥

अ०-(यथा, एकः, वायुः)(भुवनम् प्रविष्टः) (रूपंरूपम्) (प्रतिरूपः) (बभूव) (तथा, एकः) (सर्वभूतान्तरात्मा) (रूपंरूपम्) प्रतिरूपः (च) (बहिः) सर्वस्मिन् ब्रह्माण्डे सूत्रात्मना व्याप्तः ॥

भा०—यथा वायुः सूक्ष्मरूपेण सर्ववस्तुषु व्याप्तस्तत्तद्वस्तुस्वरूपाद्विलक्षणो नोपलभ्यते तथैव सर्वस्मिंश्चराचरे जगति व्याप्तः परमात्मापि तत्तद्वस्तुस्वरूपात्पृथङ्नोपलभ्यते ॥१०॥

भाषार्थ—[यथा] जैसे [एकः] एक [वायुः] वायु [भुवनम्] संसार में [प्रविष्टः] व्याप्त [रूपंरूपम्] प्रत्येक वस्तु के रूप के [प्रतिरूपः] तुल्य रूप वाला [बभूव] हो रहा है [तथा] वैसे [एकः] एक अद्वैत सजातीय विजातीय स्वगत भेद शून्य [सर्वभूतान्तरात्मा] सब भूतों का अन्तर्यामी [रूपं रूपम्]

परमात्मा प्रत्येक वस्तुके रूपके तुल्य [प्रतिरूपः] रूपवाला हो रहा है [च] और [बहिः] सब ब्रह्माण्ड में सूत्रात्मा रूप से भी आत्मा व्याप्त है ॥

भा०—जैसे वायु सूक्ष्म रूपसे सब वस्तुओंमें व्याप्त उसर वस्तुके स्वरूपसे विलक्षण नहीं प्रतीत होता वैसे ही सब चराचर जगत् में व्याप्त परमात्मा भी उस २ वस्तु के स्वरूप से पृथक् नहीं प्राप्त होता ॥ १० ॥

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११ ॥

अ०—(यथा) (सर्वलोकस्य) कर्मणि षष्ठी (चक्षुः) दर्शनहेतुः । करण औणादिक उसिः प्रत्ययः (सूर्यः) सन्नपि (चाक्षुषैः) भ्रमान्मिथ्यादर्शनैरशुच्यादिदर्शनैर्वा (बाह्यदोषैः) संसर्गदोषैः (न, लिप्यते) (तथा) (सर्वभूतान्तरात्मा) सर्वप्राणिनामन्तर्यामी (एकः) (बाह्यः) सर्ववस्तुनि व्याप्तोपि तद्दोषेणालिप्तः परमेश्वरः (लोकदुःखेन) संसारोत्पन्नदोषेण (न, लिप्यते) नानुसज्यते ॥

भा०—यथा यतो हेतोः सूर्यप्रकाशमन्तरा

[illegible] Avidya or Nescience that has super[illegible] the phenomena of [illegible] the world — [illegible] on the transcendental Atman
phenomenon of [illegible]

कश्चित्किञ्चिदपि न पश्यति रजन्यामपि चन्द्रादयः सूर्यप्रकाशानुग्रहेणैव किञ्चिद्दर्शयन्ति तस्मात्सूर्य एव रूपज्ञानमात्रस्य कारणम् । एवं सत्यपि भ्रमादन्यथादर्शनादिजन्यविपरीतफलभाक् सूर्यो न भवति तथैव जीवरूपेण सर्वजनहृद्देशस्थः परमेश्वरः सूर्यवत्स्वाभाविकशक्त्या सर्वं प्राणिकृत्यं प्रकाशयन्नपि मनोबुद्ध्याद्यन्तःकरणकृतशुभाशुभंकर्मफलेन न सम्बध्यते ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (सर्वलोकस्य) सब संसार को (चक्षुः) दिखाने वाला होता हुआ भी (सूर्यः) सूर्य (चाक्षुषैः) भ्रमसे अन्यको अन्य देखने वा मलिन देखने आदि (बाह्यदोषैः) बाहरी दोषों से (न,लिप्यते) लिप्त नहीं होता (तथा) वैसे (सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्तर्यामी (एकः)एक (बाह्यः) सब वस्तुमें व्याप्त भी उस वस्तुके दोषसे युक्त न होने वाला अन्तरात्मा (लोकदुःखेन) संसारी दुःखसे वास्तव में (न,लिप्यते)दुखित नहीं होता ॥

भा०—जैसे जिस कारण सूर्य के प्रकाश विना कोई कुछ भी नहीं देखता, रात्री में भी चन्द्रमा आदि सूर्यके प्रकाश की सहायता से ही कुछ २ प्रकाश करते हैं इस कारण सूर्य ही सब रूप ज्ञान का कारण है ऐसा होने पर भी अन्यथा देखने वा प्रतिकूल देखने आदिसे हुए विपरीत फल का भागी सूर्य नहीं होता वैसे ही सब मनुष्यादि के हृदय में जीवरूप से स्थित परमेश्वर सूर्यके तुल्य स्वाभाविक शक्तिसे सब प्राणियों

he beloved eternal happiness & to none else.

Bless 12-14.

के कृत्य का प्रकाश करता हुआ भी मन बुद्धि आदि अन्तःकरण के किये शुभ अशुभ कर्मफलसे सम्बद्ध नहीं होता ॥ ११ ॥

one Controller The soul of all beings outwardly manifold who does Him within the wise their eternal happiness not others

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१२॥

अ०—(सर्वभूतान्तरात्मा) (एकः) (वशी) सर्वं स्थावरजङ्गमं वशे तिष्ठति यस्य सः (यः) (एकम्) विशुद्धविज्ञानमेकरसमद्वैतं चिन्मयम् (रूपम्) (बहुधा) नामरूपाद्यशुद्धोपाधिभेदेन बहुप्रकारकं बहुरूपं स्थूलम् (करोति) उत्पादयति (ये) (धीराः) ध्यानशीलाः निवृत्तबाह्यवृत्तयो विद्वांसः (तम्) (आत्मस्थम्) स्वात्मनि हृदयाकाशे बुद्धौ चैतन्याकारेणाभिव्यक्तम् (अनुपश्यन्ति) आचार्योपदेशानन्तरं पश्यन्ति (तेषाम्) (शाश्वतम्) सनातनम् मुक्त्याख्यम् (सुखम्) भवति (नेतरेषाम्) ॥

भा०—ये जनाः सर्वस्रष्टारं सर्वनियन्तारं सर्वस्य हृदि संस्थितं जगदीश्वरमेव स्वात्मनि चिदाभासजीवरूपेणावस्थितं योगाभ्यासेन ध्यायन्ति त एव सनातनसुखभागिनो जायन्ते नेतरे मूढाः ॥ १२ ॥

भावार्थः—(सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्तर्यामी (एकः) एक अद्वैत (वशी) सब चराचर जगत् जिस के वश में है ऐसा (यः) जो (एकम्) अद्वैत एकरस विशुद्ध विज्ञानात्मक चेतन ऐसे एक (रूपम्) रूप को (बहुधा) बहुत प्रकार का स्थूल कार्यरूप (करोति) उत्पन्न करता (ये) जो (धीराः) ध्यानशील विद्वान् लोग (तम्) उस (आत्मस्थम्) अपने हृदयस्थ बुद्धितत्त्व में चेतन स्वरूप से प्रकट रहने वाले आत्माको (अनुपश्यन्ति) गुरु से उपदेश पाकर देखते वा अनुभव करते हैं (तेषाम्) उनको (शाश्वतम्) सनातन मुक्ति का (सुखम्) सुख प्राप्त होता है (नेतरेषाम्) अन्यों को नहीं ॥

भा०—जो लोग सब के स्रष्टा सब के नियन्ता और सब के हृदय में स्थित अपने अन्तःकरण में चिदाभास जीवरूपसे अवस्थित जगदीश्वर का ही योगाभ्यास द्वारा ध्यान करते हैं वे ही सनातन नित्य सुख के भागी होते हैं अन्य मूर्ख नहीं ॥ १२ ॥

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ १३ ॥

अ०–(अनित्यानाम्) उत्पत्तिधर्मकाणां विनाशवतां मायात्मकघटपटादिकार्यपदार्थानां मध्ये (नित्यः) अविनाशी (चेतनानाम्) ब्रह्मादीनां मध्ये (चेतनः) सदैव

चैतन्यस्वरूपएव (बहूनाम्) परिच्छिन्नानां चराचरवस्तूनां मध्येऽपरिच्छिन्नोऽतएव (एकः) एवंभूतः (यः) (कामान्) कर्मफलानि (विदधाति) यथायोग्यं ददाति (ये, धीराः) विद्वांसः (तम्, आत्मस्थम्, अनुपश्यन्ति) चिदाभासरूपेण बुद्धावबस्थितं श्रवणमननानन्तरं ध्यायन्ति (तेषाम्) (शाश्वती) (शान्तिः) भवति (नेतरेषाम्) अज्ञानाम् ॥

भा०—यच्चैतन्यमाश्रित्य स्वयमचेतना जीवाः स्वकार्यं कर्त्तुं प्रभवन्ति तमेकं नित्यं कर्मफलप्रदमात्मन्यवस्थितं जगदीश्वरं ये ध्यायन्ति त एव निरन्तरं शान्ता भवन्ति नातो भिन्ना बहिर्मुखा विषयानन्दलिप्ताः ॥१३॥

भाषार्थः—(अनित्यानाम्) उत्पत्ति धर्मक होने से विनष्ट होने वाले मायात्मक घटपटादि कार्य पदार्थों के बीच (नित्यः) अविनाशी (चेतनानाम्) ब्रह्मादि चेतनोंके बीच भी (चेतनः) सदा चेतनता रूप ही है अर्थात् चेतनों को भी चेतन करने वाला (बहूनाम्) परिच्छिन्न चराचर वस्तुओं में (एकः) एक अपरिच्छिन्न परमेश्वर है (यः) जो जीवों के लिये (कामान्) यथायोग्य कर्मों का फल (विदधाति) देता है (ये) जो (धीराः) विद्वान् लोग (तम्) उस (आत्मस्थम्) चिदाभासरूप से अपने आत्मा में स्थित परमात्मा को (अनुपश्यन्ति) गुरु आदि से सुने विचार के

अनुकूल ध्यान करते (तेषाम्) उन को (शाश्वती) सदा निरन्तर ठहरने वाली (शान्तिः) शान्ति प्राप्त होती है (न, इतरेषाम्) किन्तु अन्य अज्ञानियों को नहीं ॥

भा०—जिस की चेतनता का आश्रय लेकर स्वयं जीवात्मा अपने कार्य करने को समर्थ होते हैं उस कर्मफल दाता अपने अन्तःकरण में अवस्थित एक नित्य वर्त्तमान जगदीश्वर का जो लोग ध्यान करते हैं वे ही निरन्तर शान्त होते हैं इस से विपरीत विषयों का आनन्द भोगने में लिप्त बाह्य वृत्ति रखने वाले लम्पट पुरुष शान्त नहीं होते ॥ १३ ॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् । कथन्नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥ १४ ॥

अ०—नचिकेता आह-(अनिर्देश्यम्) अंगुल्यादिसंकेतेन निर्देष्टुमशक्यम् (परमम्, सुखम्) सर्वोत्तमसुखमयं ब्रह्म भवादृशा विद्वांसः (तदेतत्) प्रत्यक्षमेवेति (मन्यन्ते) (तत्) ब्रह्म (किमु) (भाति) दीप्यते प्रकाशात्मकं भवति (वा) आहोस्वित् (विभाति) विस्पष्टं दृश्यते किंवा नेति एतदहम् (कथन्नु) (विजानीयाम्) तथा ब्रूहीति शेषः ॥

भा०=परमसुखात्मकमात्मतत्त्वमंगुल्यादिनाऽनिर्देश्यमपि कथं विरक्ता ज्ञानिनः

प्रत्यक्षं मन्यन्ते किं तद्द रूपगुणयुक्तमाहो-
स्विद्रूपम् ॥ १४ ॥

भावार्थः—नचिकेता फिर बोला कि—(अनिर्देश्यम्) अंगुलि आदि उठाकर जिस का बताना नहीं हो सकता (परमम्, सुखम्) सर्वोत्तम सुख स्वरूप ब्रह्म को आप जैसे विद्वान् लोग (तदेतदिति) वह यही प्रत्यक्ष है ऐसा (मन्यन्ते) मानते हैं (तत्) वह ब्रह्म (किनु) क्या (भाति) प्रकाश रूप होता (वा) अथवा क्या (विभाति) विस्पष्ट दीखता है वा नहीं यह मैं (कथन्नु) कैसे (विजानीयाम्) जानूं वैसा आप कहिये ॥

भा०—अत्यन्त सुख स्वरूप आत्मतत्त्व अंगुली आदि उठा के बताने योग्य न होने पर भी विरक्त ज्ञानी लोग उस को प्रत्यक्ष कैसे मानते हैं ? क्या वह रूप गुणयुक्त है ? अथवा नहीं ॥ १४ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव
भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं
विभाति ॥ १५ ॥

अ०—(तत्र) तस्मिन् ब्रह्मणि (न) (सूर्यः) (न) (चन्द्रतारकम्) चन्द्रश्च तारकाश्चेति द्वन्द्व एकवत् (भाति) (इमाः) प्रत्यक्षाः (विद्युतः) चाक्षुषतेजोऽभिभावुका अपि (न, भान्ति) तर्हि (अयम्) भौतिकः

पार्थिवः (अग्निः) (कुतः) भायात् किन्तु (तमेव) (भान्तम्) प्रकाशयन्तम् (सर्वम्) सूर्यादिकम् (अनुभाति) तद्दत्तप्रकाशमाप्यैव प्रकाशते (तस्य) परमेश्वरस्य (भासा) दीप्त्या (इदम्) (सर्वम्) सूर्यादि (विभाति) विस्पष्टं प्रकाशते ॥

भा०—यदिदं सूर्यादिप्रकाशकं जगत्प्रत्यक्षतयोपलभ्यते तद्विभाति तेषु च स्वतः प्रकाशो नास्ति किन्तु परमात्मा तान् सूर्यादीन् भाति स्वदत्तेन तेजसा प्रकाशयति सूर्यादयश्च तं प्रकाशयितुमशक्ताः । तस्य ततोऽधिकतेजस्कत्वात् । अतएव ब्रह्मज्ञानोपायेषु सूर्यादेः प्रकाशस्तस्यैव परमात्मनः प्रकाश इति प्रत्यक्षतया द्रष्टव्यः । अतएवोक्तम्—यदादित्य गतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजोविद्धिमामकम् ॥ इति भगवद्गीतासु, तथा शुक्लयजुषि अ० ३ । अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः । सूर्योज्योतिर्ज्योतिःसूर्यः । इत्यादि प्रमाणैः सिद्धं यद्भौतिकप्रकाशाद्भिन्नमेवात्मतत्त्वमतएव तदेतदितिवादिनः प्र-

त्यक्षंमन्यन्ते त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासीत्यत्र ब्रह्मणो वायुरूपेण प्रत्यक्षत्वं दर्शितम्॥ १५ ॥

भावार्थः—(तत्र) उस ब्रह्म में (न) न (सूर्यः) सूर्य (न) न [चन्द्रतारकम्] चन्द्रमा और तारे [भाति] प्रकाश करते तथा [इमाः] ये प्रत्यक्ष चमकने और [विद्युतः] नेत्र सम्बन्धी तेज को दबाने वाली भी बिजली [न,भान्ति] प्रकाश नहीं करती तो [अयम्] यह पृथिवी पर प्रसिद्ध भौतिक [अग्निः] अग्नि [कुतः] कहां से प्रकाश करे क्योंकि सूर्य का प्रकाश अग्निसे प्रबल है और भौतिक अग्नि का कारण भी सूर्य है जब कारणका उस में प्रकाश नहीं पहुंचता तो कार्य का क्या पंहुचेगा । किन्तु [तमेव] उसी [भान्तम्] स्वयं प्रकाशमान हुए के पीछे [सर्वम्] सब सूर्यादि [अनुभाति] उस के दिये प्रकाश को पा कर ही प्रकाशित होते हैं (तस्य] उस परमेश्वर की [भासा] दीप्तिसे [इदम्] यह [सर्वम्] सब सूर्यादि [विभाति] स्पष्टता पूर्वक प्रत्यक्ष प्रकाश करते हैं ॥

भा०—जो यह सूर्यादि प्रकाशक जगत् प्रत्यक्षता से प्राप्त होता वही प्रकाशित है उनमें अपना स्वतः प्रकाश नहीं किन्तु परमात्मा उन सूर्यादि को अपने दिये तेज से प्रकाशित करता है और सूर्यादि उस को प्रकाशित नहीं कर सकते क्योंकि परमेश्वर उन से अधिक तेज वाला है इसी से ब्रह्मज्ञान के उपायों में सूर्यादि के प्रकाश को उसी परमेश्वर के प्रकाशरूप से प्रत्यक्ष देखना चाहिये—भगवद्गीता में कहा है कि "सूर्य चन्द्रमा और अग्नि में विद्यमान जो तेज सब जगत् को प्रकाशित करता है हे अर्जुन ! वह तेज मुझ ईश्वर का है „ तथा शुक्ल यजुर्वेद में कहा है कि जो अग्नि और सूर्याभिमानी दे-

तनात्मा है वही ज्योति है और जो प्रकाश है वही चेतन अग्नि आदित्य है । इन प्रमाणोंसे भौतिक प्रकाश और आत्मा का अभेद सिद्ध है । इस कारण वह यही है ऐसा कहने वाले ईश्वर को अग्नि वायु सूर्य और चन्द्रमादि रूप से प्रत्यक्ष मानते हैं ॥ १५ ॥ यह पांचवीं वल्ली समाप्त हुई ॥

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद्वै तत् ॥ १ ॥

अ०—(ऊर्ध्वमूलः) ऊर्ध्वमुपरिष्टान्मूलं विष्णोः परमं पदमस्य सोऽयमव्यक्तादिस्थावरान्तः संसारवृक्षः । अध्यात्मं मानवदेहो वा (अवाक्शाखः) अवागधस्ताच्छाखाः स्वर्गनरकमर्त्यलोकादिरूपा यस्य सः (एषः) प्रत्यक्षः प्रवाहेणानादित्वाच्चिरप्रवृत्तः (सनातनः) (अश्वत्थः) श्वः स्थास्यति नवेति संशयापन्नोऽश्वत्थवृक्षवत्स्वरूपेणानित्यः । यदस्यसंसारवृक्षस्यमूलम् (तदेव) (शुक्रम्) शुक्रं निर्मलं निष्कलङ्कंचैतन्यात्मज्योतिःस्वभावम् (तत्) (ब्रह्म) बृहत् (तदेव) (अमृतम्) अविनश्वरं शास्त्रेषु विद्वद्भिः (उच्यते) कथ्यते सत्यत्वात्

(तस्मिन्) ब्रह्मणि (सर्वे) (लोकाः) गन्धर्वनगरमरीच्युदकमायासमा भूरादयश्चतुर्दश लोकाः (श्रिताः) धृताः (तत्, उ) ब्रह्म (कश्चन) लोकः पुरुषो वा (न, अत्येति) नोल्लङ्घयति (एतद्वै तत्) तदेतदेव ब्रह्मास्ति॥

भा०—यथाऽश्वत्थादिवृक्षविशेषाणामुपरिष्टाच्छाखाअधस्ताच्च मूलं भवति तस्माद्विपरीतोऽयंसंसारवृक्षो देहवृक्षो वा यस्य मूलमुपरि शाखाऽअधः स्वरूपेणायमनित्यः सृष्टिप्रवाहेण नित्यश्च तस्य संसारवृक्षस्य वेदान्तनिर्धारितमात्मतत्त्वमेव मूलं त्रिगुणात्मिका माया स्कन्धाः भूरादयो लोकाः शाखाः, श्रुतिस्मृतिन्यायादिविद्याः पत्राणि, यज्ञदानतपआद्यनेकक्रियाः पुष्पाणि बहुविधसुखदुःखवेदनादीनि फलानि सन्ति सच जन्ममरणजराशोकाद्यनेकानर्थात्मको ब्रह्मनाद्वृक्षइत्युच्यते अस्य सर्वस्य स्रष्टारमस्मिन्नेवसंसारवृक्षे देहेवाऽवस्थितं शुद्धमविनाशिनं सर्वाधारं सर्वोपरिविराजमानं ज्ञातुं यः प्रयतते स एव दुःखसागरं तरति ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ऊर्ध्वमूलः) विष्णु भगवान् का परम पद रूप जिस की जड़ ऊपर को है ऐसा (अवाक्शाखः) नीचे को जिस की डाली हैं ऐसा (एषः) यह प्रत्यक्ष प्रकृति से लेकर स्थावर पर्यन्त संसार रूप वृक्ष वा अध्यात्म में मनुष्य शरीर (सनातनः) प्रवाह से अनादि होनेके कारण सनातन (अश्वत्थः) कल ठहरेगा वा नहीं इस प्रकार जिसकी सत्ता वा जीवन अनित्य है अर्थात् पीपल वृक्ष के समान स्वरूप से अनित्य है। जो इस संसार वृक्ष का मूल कारण है (तदेव) वही (शुक्रम्) शुद्ध निष्कलंक निर्मल चैतन्य आत्मज्योति स्वभाव है (तत्, उ) वही (ब्रह्म) बड़ा (तदेव) वही सत्य होने से (अमृतम्) अविनाशी है ऐसा विद्वान् लोगों ने शास्त्रों में (उच्यते) कहा है (तस्मिन्) उसी ब्रह्म में (सर्वे) सब (लोकाः) गन्धर्व नगर और मृगतृष्णा के तुल्य पृथिव्यादि चतुर्दश लोक (श्रिताः) ठहरे हुए हैं (तत्) उस ब्रह्म को (कश्चन) कोई लोक वा पुरुष (न, अत्येति) उल्लङ्घन नहीं कर सकता (एतद्वै तत्) वह यही ब्रह्म है ॥

भा०—जैसे पीपल आदि वृक्षों की ऊपर को शाखा नीचे को जड़ होती है उस से विपरीत यह संसार रूप वा शरीर रूप वृक्ष है जिस की जड़ें वा शिर ऊपर को और स्वर्गादि वा बाहु अङ्गुली गोड़ आदि शाखा (डाली) नीचे को बनी हैं यदि मनुष्य का शिर नीचे करके उलटा खड़ा किया जाय तौ ठीक वृक्षाकार जान पड़ता है। सो यह संसार रूप वा देह रूप वृक्ष स्वरूप से अनित्य और सृष्टि के प्रवाह से नित्य है उस संसार वृक्ष का वेदान्त में निश्चित किया आत्मतत्व ही मूल कारण है त्रिगुण प्रकृति वा माया ही उस के स्कन्ध [गुद्दे] हैं, भूः भुवः आदि चतुर्दश लोक ही

जिस की शाखा हैं श्रुति स्मृति न्यायादि विद्या ही जिस के पत्ते हैं यज्ञ दान तप आदि अनेक विध कर्म ही जिसके पुष्प हैं और बहुविध सुख दुःखादि का अनुभव होना ही जिस के फल हैं जन्म मरण जरावस्था और शोकादि अनेक अनर्थों रूप आश्चन नाम विध्वंस होने से वृक्ष कहाता है। इस विलक्षण कार्य के रचने वाले इसी संसार वृक्ष में वा देह में व्याप्त शुद्ध अविनाशी सबके आधार सर्वोपरि विराजमान परमेश्वर के जानने को जो प्रयत्न करता है वही दुःखसागर के पार हो जाता है ॥ १ ॥

यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्। महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २ ॥

अ०—प्रलयानन्तरं परमेश्वरादेव (निःसृतम्) उत्पन्नम् (यत्, इदम्) (किञ्च) अनन्तपरमात्मापेक्षयाऽल्पं तुच्छं च (जगत्) अस्ति तत् (सर्वम्) (प्राणे) प्रकृष्टतयाऽनिति जीवयति सर्वान् प्राणिन इति सर्वस्य जीवनहेतौ परमात्मनि सत्येव (एजति) कम्पते स्वस्वकर्मणि प्रवर्त्तते किंभूतं जगत् (महद्भयम्) विवेकिनो महद्भयहेतुकम् (वज्रम्) वज्रवद्घातकम् (उद्यतम्) जन्ममरणप्रवृत्तिहेतुकम् । यद्वा महद्भयमित्यादि-

शब्दत्रयं ब्रह्मणएव विशेषणं तदित्थं उद्यतं वज्रमिव महद्भयहेतुकम् । यथा खड्गोद्यतकरं स्वामिनं दृष्ट्वा भृत्याः स्वस्वकर्मणि नियमेन प्रवर्त्तन्ते तथैव सूर्यादि सकल जगत्तस्य भयादिव यथावन्नियमेनास्तोदयादौ प्रवर्त्तते (ये) जनाः (एतत्) ब्रह्म (विदुः) जानन्ति (ते) (अमृताः) मुक्ताः (भवन्ति) ॥

भा०—जीवकलारूपेणाखिलशरीरेष्ववस्थितः परमेश्वरः सर्वस्य जीवनहेतुत्वात्प्राणस्तस्मिन्सर्वसत्ताहेतुके सत्येव सर्वं चराचरं जगत्स्वस्वकर्मणि नियमेन चेष्टते तमेव ज्ञात्वा दुःखाद्विमुच्यते ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रलय की समाप्ति में परमेश्वर से ही (निःसृतम्) उत्पन्न हुआ (यत्, इदम्) जो यह (किं च) कुछ (अनन्त परमेश्वर की अपेक्षा) छोटा वा तुच्छ (जगत्) जगत् है वह (सर्वम्) सब (प्राणे) सब प्राणियों के जीवनके हेतु परमात्मा की विद्यमानता में ही (एजति) अपने २ कर्म में प्रवृत्त होता है अर्थात् ईश्वर ही जीवरूप से सबमें प्रविष्ट होकर जड़ शरीरादि को चेतन बनाता है । यह जगत् कैसा है कि (महद्भयम्) विवेकिजन को बड़े भय वा दुःख का हेतु (जैसे आंख में पड़ा तिनका अधिक दुःख देता वही तृण अन्यत्र शरीर पर दुःख नहीं देता वैसेही संसारी छोटे २ दुःख भी विवेकी पुरुष को बड़े २ प्रतीत होते हैं) (वज्रम्)

वज्र के तुल्य पीड़ा देने वाला (उद्यतम्) जन्म मरण के प्रवाह को बढ़ाने वाला जगत् है अथवा (महद्भयम्) इत्यादि तीन पद ब्रह्म के ही विशेषण माने जावें तो अनुचित नहीं जैसे उठाये हुए शस्त्र के तुल्य ब्रह्म बड़े भय का हेतु है. जैसे खड्ग हाथ में लिए हुए स्वामी को देखकर भृत्य लोग नियम पूर्वक अपना २ काम करते हैं वैसे सूर्यादि सब जगत् उस परमेश्वर के भय से उदय अस्त आदि काम में नियम पूर्वक यथावत् प्रवृत्त रहता है (ये) जो मनुष्य (एतत्) इस ब्रह्म को (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) मुक्त (भवन्ति) होते हैं ।

भा०—जीव नाम रूप से सब शरीरों में विद्यमान परमेश्वर सब के जीवन का हेतु होने से प्राण नामक है सब की विद्यमानता के तुल्य उस के विद्यमान होने से ही सब चराचर जगत् अपने २ काम में नियम पूर्वक चेष्टा करता है उसी को जानके दुःख से छूट सकते हैं ॥ २ ॥

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ ३ ॥

अ०—कथं भयहेतुकं ब्रह्म तदेव स्पष्टयति (अस्य) ब्रह्मणः (भयात्) (अग्निः) (तपति) (भयात्)(सूर्यः)(तपति)प्रकाशते(भयात्)(इन्द्रः) विद्युदभिमानीन्द्रो देवराजो विद्योतते (च) (वायुः) भयाद् वाति (च) पञ्चमः) (मृत्युः) (धावति) इतस्ततो धावनेन प्राणि-

नो नियमानुकूलं मारयति । यद्वा यत्र ब्रह्म मृत्युं नेच्छति ततः पृथग्धावति न तं मारयितुं शक्तः ॥

भा०—यथोद्यतवज्रहस्तं स्वामिनमभिमुखीभूतमायान्तमालोक्य प्रेष्याः स्वस्वकर्मणि नियमेन धावन्ति तथैव तत्तदभिमानिजीवरूपेण सूर्यादाववस्थितस्यैकस्यैव विभोश्चेतनस्य परब्रह्मणो भयादेव सूर्यचन्द्रनक्षत्रादिकमखिलं जगत्प्रतिक्षणमविश्रान्तं नियमानुकूलं धावति तज्ज्ञानादेव मुक्तिर्भवितुमर्हति ॥ २ ॥

भाषार्थः—भय का हेतु ब्रह्म कैसे है सो स्पष्ट कहते हैं (अस्य) इस ब्रह्म के (भयात्) भय से (अग्निः) अग्नि (तपति) प्रज्वलित होकर संसारका कार्य करता है [भयात्] उसी के भय से [सूर्यः] सूर्य (तपति) ताप करता [भयात्] उस के भय से (च) ही [इन्द्रः] बिजुली का अभिमानी इन्द्रदेव चमकता है । [च] और [वायुः] वायु उसी के भय से चलता है तथा [पंचमः] पांचवां [मृत्युः] मृत्यु भी [धावति] उसी के भय से इधर उधर भाग कर नियमानुकूल प्राणियों को मारता है अथवा जिस का मरना ब्रह्म की इच्छा से विपरीत है उस से पृथक् भागता है उसको मार नहीं सकता ॥

भा०—जैसे हाथ में शस्त्र चठाये हुए स्वामी को सन्मुख

आते देखकर नौकर लोग अपने २ काम में नियम से भागते हैं वैसे ही उस २ के अभिमानी जीव रूप से उस २ सूर्य मण्डलादि में अवस्थित एक ही विभु चेतन स्वरूप परब्रह्म के भय से सूर्य चन्द्र और तारा आदि सब जगत् प्रतिक्षण विश्राम न लेता हुआ नियमानुकूल भागता है। उसी को जान के ही मुक्ति हो सकती है ॥ ३ ॥

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः। ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥

अ०—(चेत्) यदि मनुष्यः (शरीरस्य) (विस्रसः) विध्वंसनात् (प्राक्) पूर्वमेव (इह) अस्मिञ्जन्मनि लोके वा (बोद्धुम्) (अशकत्) यस्य ब्रह्मणो भयादेव सर्वं जगत्स्वस्वकर्मणि चेष्टते तमेव सर्वत्र सर्वात्मकत्वेन साक्षात् कुर्यात् तर्हि वर्त्तमाने जन्मन्येव कल्याणभाग् भवति। चेद्यदि बोद्धुमिह न शक्नोति (ततः) तस्मादबोधात् (सर्गेषु) सृज्यन्ते स्रष्टुं योग्या मनुष्यादिप्राणिनः स्थावराश्च येषु तेषु (लोकेषु) पृथिव्यादिषु (शरीरत्वाय) शरीरभावाय शरीरमुपादातुम् (कल्पते) समर्थो भवति ॥

अ०—मनुष्येण शरीरपतनात्पूर्वमेवात्मज्ञानाय प्रयत्नोऽनुष्ठेयः । यस्मादिहैव ब्रह्मज्ञानप्रकाशेनाज्ञानान्धकारनिवृत्तौ सर्वोपद्रवा निवर्त्तेरन्' जन्मान्तरे पशुतिरश्चादियोनिषु विहरन्कदा प्रसंगः स्यात् । नहि सदा मनुष्योनावुत्तमविवेकिप्रसङ्गे च जन्म स्यादिति सम्भवम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—(चेत्) यदि मनुष्य (शरीरस्य) शरीर के (विस्रसः) विध्वंस होने छूटने से (प्राक्) पहिले ही (इह) इस जन्म वा लोकमें (बोद्धुम्) जाननेको (अशकत्) जिस ब्रह्म के भय से ही सब जगत् अपने २ काम में चल रहा है उसी को सब में सब रूप से साक्षात् करे तो इसी जन्म में कल्याणभागी हो सकता है। और यदि नहीं जान सकता तो (ततः) उस अज्ञान के होने से (सर्गेषु) रचनामें आने वाले मनुष्यादि चर प्राणी तथा अचर जिन में रचे जाते उन (लोकेषु) पृथिव्यादि लोकों में [शरीरत्वाय] शरीर ग्रहण करने के लिये [कल्पते] समर्थ होता है ॥

भा०—मनुष्य को योग्य है कि शरीर छूटने से पहिले ही आत्मज्ञान के लिये प्रयत्न करे जिस से इसी जन्म में ब्रह्मज्ञान रूप प्रकाश से अज्ञान रूप अन्धकार की निवृत्ति होने पर सब उपद्रव शान्त होवें जिससे अन्त समय पश्चात्ताप न करना पड़े कि हम ने कुछ न कर पाया जंजालमें ही जन्म बीत गया । जन्मान्तर में पशु पक्षी आदि योनियोंमें भ्रमता हुआ जीव को कब मनुष्य योनिमें आने का अवसर मिलेगा सदा मनुष्य योनि में और वहां भी उत्तम ज्ञानी लोगों में जन्म हो यह सम्भव नहीं ॥ ४ ॥

यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके । यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥५॥

अ०-कथमिह बोद्धुं शक्य आत्मेत्युच्यते (यथा) (आदर्शे) दर्पणे स्वमुखादि दृश्यते (तथा) तेनैव प्रकारेण (आत्मनि) शुद्धे निर्मले बुद्धिरूपेऽन्तःकरणे ध्यानयोगेनात्मतत्त्वं दृश्यते (यथा) (स्वप्ने) स्वप्नावस्थायामिन्द्रियार्थाभावेऽपि पदार्थाः प्रत्यक्षाइव दृश्यन्ते श्रूयन्ते च (तथा) (पितृलोके) पितृयोनिस्थसर्वप्राणिनां स्वप्नवदविविक्तमात्मदर्शनं भवति (यथा) (अप्सु) उदके (परीवददृशे) परिदृश्यतइवाविस्पष्टावयवं शरीरं दृश्यते (तथा) (गन्धर्वलोके) देवगन्धर्वनिवासे गन्धर्वयोनिस्थसर्वप्राणिनामस्पष्टमात्मदर्शनं भवति (छायातपयोरिव) यथा छायातपयोः स्पष्टं भेदो लक्ष्यते तथा (ब्रह्मलोके) सप्तमाकाशे सत्यलोके ये गच्छन्ति ते स्पष्टमेव साक्षादात्मानं पश्यन्ति ॥

भा०—अत्र स्वप्नोदकच्छायातपानां दृ-

Seperately produced — i.e. originating simultaneously from
Rising & setting, i.e. Their (?) expression & circumscription
changefulness, as observed in Their waking & dreaming
states. The force of the epithet is that the Senses
ष्टान्तत्रयं परोक्षविषयप्रमादर्शदृष्टान्त एकः
of Their changeful nature can very well be
प्रत्यक्षविषयकः । योगाभ्यासरीत्या बुद्धिं
संशोध्य तदा दर्पणवन्निर्मले स्वच्छे बुद्धिसत्त्वे
ध्यानेन साक्षादात्मतत्त्वं दृश्यते । अस्य प्रत्य-
क्षविषयस्य तथात्वे परोक्षस्यापि सत्यत्वं प्रत्ये-
तव्यम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—इसी जन्म में आत्मज्ञान कैसे हो सकता है सो कहते हैं—(यथा) जैसे (आदर्शे) दर्पण में अपना मुख आदि दीखता है (तथा) वैसे ही (आत्मनि) शुद्ध निर्मल बुद्धिरूप अन्तःकरण में ध्यानयोग से आत्मतत्त्व दीखता है (यथा) जैसे (स्वप्ने) स्वप्नावस्थामें इन्द्रियों और वस्तु का सम्बन्ध न होने पर भी पदार्थ प्रत्यक्ष जैसे दीखते वा सुन पड़ते हैं (तथा) वैसे (पितृलोके) पितृयोनिमें उत्पन्न होने वाले सब प्राणियोंको स्वप्नके तुल्य विवेक रहित आत्म-तत्त्व दीखा करता है (यथा) जैसे (अप्सु) जलमें [परीव-ददृशे] सब ओरसे गोलाकार स्पष्ट अवयवोंकी प्रतीतिके विना शरीरकी छाया दीखती है [तथा] वैसे [गन्धर्व-लोके] देव गन्धर्वयोनिके प्राणियोंको अविस्पष्ट आत्मज्ञान स्वयं हुआ करता है और [छायातपयोरिव] जैसे छाया और घाममें स्पष्ट भेद प्रतीत होता वैसे [ब्रह्मलोके] अपने पुण्यके प्रतापसे जो लोग सातवें सत्य लोकमें जाते हैं वे घाम छायाके तुल्य स्पष्टतया आत्माको भिन्न देखते हैं ॥ ५ ॥

Senses, Seperately existing, rising & setting
इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च
which — of those of seperate origin
यत् । पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न
grieving not — the self, is it ...
शोचति ॥ ६ ॥

अ०-(पृथगुत्पद्यमानानाम्) स्वस्वशब्दादिविषयग्रहणप्रयोजनाय स्वस्वकारणादाकाशादेः पृथक् पृथगुत्पन्नानाम् (इन्द्रियाणाम्) श्रोत्रादीनां नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावात्सच्चिदानन्दस्वरूपाज्जीवरूपेणावस्थितात्परमात्मनः (पृथग्भावम्) (च) (यत्) यौ (उदयास्तमयौ) उत्पत्तिविनाशावाविर्भावतिरोभावौ जीवनमरणे ते अपीन्द्रियाणां शरीरस्य वा स्तइति (मत्वा) ज्ञात्वा (धीरः) धीमान्विवेकी जनः (न,शोचति) न शोकाकुलो भवति ॥

भा०—शरीरस्थोऽप्यात्मा शरीरेन्द्रियैः कदाचिदपि न संयुज्यते अतोऽपृथक्त्वं प्राप्तस्यैव जीवात्मनइन्द्रियेभ्यः पृथग्भाव उच्यते। आविर्भावतिरोभावौ चेन्द्रियाणां शरीरस्यच जन्ममरणप्राप्तौ भवतो न त्वात्मनः । स तु सदैकरसो नित्य एकः शुद्ध उत्पत्तिविनाशादिधर्मेभ्यः पृथग्वर्त्तमानइति ज्ञात्वा ज्ञानी शोकातिगो मोदते। अर्थाज्जन्ममरणादयो ये दुःखहेतवः स्वस्मिन्नज्ञानेनारोपितास्तेषां वस्तुतोऽभावेप्रतीयमानेऽखिलं दुःखं निवर्त्तते ॥६॥

भावार्थः—(पृथगुत्पद्यमानानाम्) अपने २ शब्दादि विषयके ग्रहण करनेके लिये अपने २ आकाशादि कारणसे पृथक् २ उत्पन्न हुए (इन्द्रियाणाम्) श्रोत्रादि इन्द्रियां नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सच्चिदानन्द स्वरूप जीव नाम रूपसे स्थित परमात्मासे (पृथग्भावम्) पृथक् हैं (च) और (यत्) जो (उदयास्तमयौ) उत्पत्ति विनाश वा जन्मरूपसे प्रकट होना तथा मरण रूपसे अप्रकट होना हैं वे भी इन्द्रियों तथा शरीरके ही धर्म हैं इस प्रकार सबसे पृथक् शुद्ध सनातन अपने को (मत्वा) जानके (धीरः) बुद्धिमान् सत् असत्का विवेक करने वाला पुरुष (न, शोचति) शोकयुक्त नहीं होता ॥

भा०—जीव रूपसे इसी शरीरमें रहता हुआ भी आत्मा शरीर और इन्द्रियोंके दोषोंसे कभी लिप्त नहीं होता। इस कारण इन्द्रिय दोषसे जिसका लिप्त होना प्राप्त है उस जीव का ही इन्द्रियोंसे पृथक् होना कहा है। प्रकट अप्रकट होने जन्म मरणकी प्राप्तिमें इन्द्रियों वा शरीरके होते हैं किन्तु आत्माके नहीं वह तो सदा एकरस, नित्य, एक, शुद्ध और सनातन उत्पत्ति विनाशसे सदा पृथक् है ऐसा जानकर ज्ञानी शोकसे रहित सदानन्द भोगता है अर्थात् दुःखोंके हेतु जन्म मरणादि भावोंको अज्ञानसे अपनेमें मान लेने पर सब दुःख होते हैं। और जब जन्म मरणादि वस्तुतः अपनेमें नहीं ऐसा निश्चय हो जाने पर सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्। सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥७॥

अ०-(इन्द्रियेभ्यः) ग्राहकाणीन्द्रि-

याणि ग्राह्या विषयास्तद्द्वयमपीन्द्रियशब्देन गृह्यते विषयेन्द्रियेभ्यः (मनः) (परम्) सूक्ष्मम् (मनसः) (सत्त्वम्) सत्त्वगुणात्मिका बुद्धिः (उत्तमम्) शुद्धा सूक्ष्मा च (सत्त्वात्) (अधि) उपरि शुद्धं सूक्ष्मम् (महान्, आत्मा) महत्तत्त्वमुत्तमम् (महतः) महतत्त्वात् (अव्यक्तम्) प्रकृतिनामकं कारणम् (उत्तमम्) ॥

भा०—इन्द्रियादिभ्यः परेषां शुद्धत्त्वमुत्तमत्वं सूक्ष्मत्वं च प्रत्यगात्मवृत्तिकरणाय प्रतिपाद्यते ॥ ७ ॥

भा०—(इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रिय और उनके शब्दादि विषयोंसे (मनः) मन (परम्) सूक्ष्म और निर्मल (मनसः) मनसे (सत्त्वम्) सत्त्वगुण रूप बुद्धि (उत्तमम्) उत्तम निर्मल वा सूक्ष्म (सत्त्वात्) बुद्धिसे (अधि) ऊपर शुद्ध सूक्ष्म (महान्, आत्मा) महत्तत्त्व उत्तम (महतः) महत्तत्त्वसे (अव्यक्तम्) प्रकृति नामी कारण (उत्तमम्) उत्तम वा सूक्ष्म निर्मल है।

भा०—इन्द्रियादिसे पर २ मन आदिका शुद्ध उत्तम और सूक्ष्म होना सूक्ष्मसे सूक्ष्म अन्तरात्मा में चित्त ठहरानेके लिये कहा गया है ॥ ७ ॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च । यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥

अ०—(अव्यक्तात्) सर्वोपादानकारणात् (पुरुषः) पुरि ब्रह्माण्डे शयानः (व्यापकः) (च) (अलिङ्गः) बुद्ध्यादिलिङ्गानि यस्य न सन्ति (एव) प्रत्यगात्मा (परः) सूक्ष्मः शुद्धश्च (यत्) यम् (ज्ञात्वा) (जन्तुः) मनुष्यः (मुच्यते) दुःखादिति शेषः (च) (अमृतत्वम्) मुक्तिभावम् (गच्छति) प्राप्नोति ।

भा०—यः सर्वस्मात्सूक्ष्मः शुद्धोऽकृतचिन्हसंकेतः सर्वत्र चराचरे जगति व्याप्तः प्रत्यगात्मरूपेणावस्थितः परमात्मास्ति तमेव धीरो विज्ञाय मुक्तिसुखाधिकारी भवति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(अव्यक्तात्) सब वस्तुके उपादान कारण प्रकृतिसे (पुरुषः) सब ब्रह्माण्डमें शान्ति पूर्वक स्थित (व्यापकः) व्यापक (च) और (अलिङ्गः) बुद्धि आदि चिन्ह जिसके नहीं हैं जो सब संसारके धर्मोंसे वर्जित है (परः) सूक्ष्म तथा शुद्ध (एव) ही है (यत्) जिसको शास्त्र प्रमाणसे तथा आचार्यके उपदेशसे (ज्ञात्वा) जानके (जन्तुः) मनुष्य दुःख से (मुच्यते) छूट जाता है (च) और (अमृतत्वम्) मुक्ति सुखको (गच्छति) प्राप्त होता है ॥

भा०—जो सबसे सूक्ष्म वा शुद्ध जिसमें किसी प्रकारका अन्तःकरणादिका चिन्ह नहीं जो सब चराचर जगत्में व्याप्त अन्तरात्मा रूपसे अवस्थित परमात्मा है उसीको जानके विद्वान् पुरुष मुक्ति सुखका अधिकारी होता है अर्थात् मैं शरीर

वा इन्द्रियादिके सब विकारों तथा दोषोंसे मुक्त हूं ऐसा जानने पर मुक्त हो सकता है ॥ ८ ॥

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥९॥

अ०—यद्यलिङ्गस्तर्हि कथं दर्पणे मुखमिव बुद्धौ दृश्यत इत्युच्यते (अस्य) अचिन्त्याव्यक्तरूपस्य (सन्दृशे) समक्षे किमपि (रूपम्) (न, तिष्ठति) (एनम्) प्रत्यगात्मानम् (चक्षुषा) नेत्रेणापि—उपलक्षणमेतदिन्द्रियमात्रस्य सर्वेन्द्रियैरपि (कश्चन, न, पश्यति) न विजानाति कथं तर्हि विजानाति (हृदा) हृत्स्थेन (मनीषा) संकल्पविकल्पात्मकवृत्तिमनस्तस्याभिभावकेन निश्चयात्मकबुद्धिरूपेण (मनसा) मननसामर्थ्येन (अभिक्लृप्तः) अभितः प्रकाशितो दृष्टोऽन्तरात्मा ज्ञातुं शक्यः (ये) विद्वांसः (एतत्) जीवरूपेणावस्थितं शरीरं ब्रह्म (विदुः) (ते) (अमृताः) जन्ममरणरहिता मुक्ताः (भवन्ति)।

भा०—यद्यप्यस्य प्रत्यगात्मन इन्द्रियग्राह्यं किमपि स्वरूपं न विद्यते तथापि प्रत्य-

गात्मविचारे प्रवृत्तया व्यवसायात्मिकसूक्ष्म-प्रज्ञया प्रकाशितो द्रष्टुं शक्यः । एवं ज्ञानेकृ-तश्रमा जना मुक्ता भवन्ति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—यदि उसमें कोई चिन्ह नहीं है तो दर्पण-में मुखके तुल्य शुद्ध बुद्धिमें कैसे देखा जा सकता है सो कहते हैं-(अस्य) इस अचिन्त्य और अव्यक्त स्वरूप परमेश्वरका (सन्दृशे) सामने (रूपम्) कोई रूप (न, तिष्ठति) स्थित नहीं है (एनम्) इस अन्तरात्माको (कश्चन) कोई (चक्षुषा) आंख आदि इन्द्रियसे (न, पश्यति) देख वा जान नहीं सकता तो कैसे जान सकता है सो कहते हैं:—(हृदा) हृदयस्थ (मनीषा) मनकी संकल्प विकल्प करना रूप वृत्तिको दबाने वाले निश्चयात्मक बुद्धिरूप (मनसा) मनन सामर्थ्यसे (अभि-क्लृप्तः) सब ओरसे प्रकाशित वा प्रत्यक्ष हुआ अन्तरात्मा जाना जा सकता है (ये) जो विद्वान् लोग (एतत्) इस जीव रूपसे अवस्थित शरीरस्थ ब्रह्मको (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) जन्म मरण रहित हुए मुक्त (भवन्ति) होते हैं ।

भा०—यद्यपि इस अन्तरात्माका इन्द्रियोंसे ग्रहण करने योग्य कुछ स्वरूप नहीं है तो भी भीतरी विचारमें प्रवृत्त हुई निश्चयात्मक सूक्ष्म बुद्धिसे प्रकाशित हुआ देखने वा जानने योग्य होता है इस प्रकार ज्ञानमें परिश्रम करने वाले मनुष्य मुक्त होते हैं ॥ ९ ॥

Yoga — 10 — 11.

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ १० ॥

अ०—पुनः कथमात्मतत्त्वं ज्ञायतइत्युच्यते (यदा) (पञ्च) (ज्ञानानि) योगाभ्यासेन स्वस्वविषयान्निवर्त्तितानि श्रोतादीनि ज्ञानेन्द्रियाणि (मनसा, सह) (अवतिष्ठन्ते) यदा (च) (बुद्धिः) सत्त्वगुणानुरक्ता सती (न, विचेष्टते) राजसतामस कार्येषु विरुद्धा न प्रवर्त्तते (ताम्) तादृशीं शान्तावस्थां विद्वांसः (परमाम्) सर्वोत्तमाम् (गतिम्) जीवन्मुक्तिदशाम् (आहुः) कथयन्ति ॥

भा०—यदा मनुष्यस्येन्द्रियछिद्रद्वारानिःसरणशीला बाह्याऽभ्यन्तरस्था बुद्धिरूपा च वृत्तिः शान्ता निरुपद्रवा तिष्ठति कथमपि स्वभावाद्विरुद्धा न भवति तदा जीवन्मुक्तिदशामापन्नस्य तस्य ज्ञानिनो मुक्तिद्वारमपावृतं विज्ञेयम् ॥ १० ॥

भाषार्थः—फिर किस प्रकार आत्मतत्त्व जाना जाता है सो कहते हैं—(यदा) जब (पञ्च) पांच (ज्ञानानि) योगाभ्यास द्वारा अपने २ विषयोंसे हटाये गये श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रिय (मनसा, सह) मनके साथ (अवतिष्ठन्ते) चंचलता रहित स्थित हो जाते हैं (च) और जब (बुद्धिः) सत्त्वगुणमें रंगी हुई बुद्धि (न; विचेष्टते) कार्योंमें विरुद्ध नहीं चलती अर्थात् विषय वासना से दूषित नहीं होती विद्वान् लोग (ताम्)

उस शान्त स्थिर (परमाम्) सर्वोत्तम (गतिम्) अवस्थाको जीवन्मुक्तदशा (आहुः) कहते हैं।

भा०—जब मनुष्यके इन्द्रिय रूप छिद्रों द्वारा निकलने वाली बाह्य वृत्ति और भीतर अन्तःकरणमें ठहरने वाली बुद्धिरूप वृत्ति सब उपद्रवोंसे रहित शान्त स्थिर हो जाती है किसी प्रकार अपने नियत स्वभावसे विचलित नहीं होती तब जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त हुए ज्ञानी मनुष्यके लिये मुक्ति का द्वार खुला समझना चाहिये ॥ १० ॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् । अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥ ११ ॥

अ०—(ताम्) (स्थिराम्) अचलाम् (इन्द्रियधारणाम्) (योगम्, इति) योगसिद्धिर्योगफलमिदमेवास्तीति ज्ञानिनः (मन्यन्ते) (तदा) योगी (अप्रमत्तः) प्रमादरहित-उदासीनो निर्विण्णः (भवति) (हि) यतः कारणात् (योगः) योगसिद्धौ सत्याम् (प्रभवाप्ययौ) आद्यदुष्टसंस्काराणां विनाशः शुद्धनूतनसत्त्वगुणवर्द्धककल्याणकारिसंस्काराणामुत्पत्तिर्भवति ॥

भा०—यदा योगाभ्यासेन सर्वेन्द्रियाणि दृढत्वेन स्थिराणि जितानि भवन्ति तदा योगः सिद्धो भविष्यतीत्यनुमीयते । योगे प्रवृत्ते

नवीनशुद्धसंस्काराणामाविर्भावः पूर्वेषां दुष्ट-संस्काराणां च तिरोभावो जायते तदा स्वरूपेऽवस्थितो द्रष्टा प्रमादरहितो विज्ञानात्मा याथातथ्येन सर्वं विजानाति ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(ताम्) उस (स्थिराम्) अचल (इन्द्रियधारणाम्) इन्द्रियोंकी धारणारूप दशाको ज्ञानी लोग (योगम्, इति) योगसिद्धि वा योगका फल है ऐसा (मन्यन्ते) मानते हैं (तदा) तब योगी (अप्रमत्तः) प्रमाद रहित उदासीन (भवति) होता है (हि) जिस कारण (योगः) योगसिद्धि होने पर (प्रभवाप्ययौ) पहिले दुष्ट संस्कारोंका विनाश और सत्त्वगुणको बढ़ाने वाले कल्याणकारी विशुद्ध नवीन संस्कारोंकी उत्पत्ति होती है ॥

भा०—जब योगाभ्याससे सब इन्द्रिय दृढ़रूपसे स्थिर हुए जीत लिये जाते हैं तब योगसिद्धि होनेका अनुमान निश्चित हो जाता है । योगकी प्रवृत्तिमें नवीन शुद्ध संस्कारों की प्रकटता और पहिले दुष्ट संस्कारोंका अन्तर्धान होजाता है तब स्वरूपमें स्थित प्रमाद रहित द्रष्टा अन्तरात्मा यथार्थ रूपसे सबको जानता है ॥ ११ ॥

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा । अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥ १२ ॥

अ०—केनापीन्द्रियेण यन्नोपलभ्यते तन्नास्तीति प्राप्त इदमुच्यते (नैव, वाचा, न, मनसा, न, चक्षुषा) न चान्यैरिन्द्रियैरपि

प्रत्यगात्मा (प्राप्तुम्, शक्यः) किन्तु (अस्तीति) (ब्रुवतः) पुरुषात् (अन्यत्र) नास्तिकवादिनि पुरुषे (तत्) (कथम्, उपलभ्यते) न कथमपीत्यर्थः । अर्थात् मनुष्यदेहादिकार्याणि स्वस्वकारणे लीयमानानि कारणात्मना तेषामस्तित्वं प्रत्याययन्ति । तेन सर्वं चराचरं यत्कारणसत्तया सदिति मन्यन्ते तदेवास्ति ततोऽन्यत्र नास्तिकवादिनि न कथमप्युपलभ्यते॥

भा०—प्रसिद्धं संसारे सत्तासामान्यं नातः परं सामान्यमन्यदस्ति तस्माद्यत्सर्वस्मिन्सदात्मकं तदस्तीत्येव प्रतीयते । अतएव नास्तिकमते तस्य प्रतिपादनं नास्ति । कारणात्मनाऽस्तित्वं च युक्तिसिद्धमतो नास्तिकवादः प्रत्यक्षानुमानाभ्यामपि निराकर्त्तुं शक्यइति१२

भावार्थः—किसी भी इन्द्रिय द्वारा जो नहीं जाना जाता उस ब्रह्मका अभाव प्राप्त होने पर समाधान कहते हैं कि यद्यपि (नैव, वाचा) न तो वाणीसे (न, मनसा) न मन से (न, चक्षुषा) न आंखसे तथा न अन्य इन्द्रियोंसे ब्रह्म (प्राप्तुम्) प्राप्त (शक्यः) हो सकता है किन्तु (अस्तीति) ब्रह्म है ऐसा (ब्रुवतः) कहते हुएसे (अन्यत्र) अन्य नास्तिकवादी पुरुषमें (तत्) वह (कथम्) किस प्रकार (उपलभ्यते) प्राप्त होता है ? अर्थात् किसी प्रकार नहीं । अर्थात् मनुष्यके शरीरादिकार्य अपने २ कारणमें लीन होते हुए

कारण रूपसे उन कार्यों का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। इससे सभी चराचर, जिसकी सत्तासे है ऐसा माना जाता है वही उसका होना है। उससे भिन्न नास्तिक वादमें किसी प्रकार भास नहीं हो सकता॥

भा०—संसारमें सत्ता सामान्य प्रसिद्ध है, इस सत्तासे भिन्न अन्य कोई बड़ा सामान्य नहीं है, इससे जो सबमें सद्रूपसे विद्यमान है वही अस्तिरूपसे प्रतीत होता है, इसीसे नास्तिक मतमें उसका प्रतिपादन नहीं हो सकता और कारण रूपसे उसका अस्तित्व युक्तियोंसे भी सिद्ध है। इसी कारण नास्तिक वाद प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणोंसे भी खण्डित हो सकता है॥ १२॥

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः। अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति॥ १३॥

अ०—(उभयोः) अस्तिनास्तीत्येतयो मध्ये (तत्त्वभावेन) आकाशादिपञ्चतत्त्वानां सत्तया (च) सत्त्वगुणात्मिकया सूक्ष्मप्रज्ञया ऽस्य सर्वस्य नियन्ता परोक्षः कश्चित् (अस्ति) (इत्येव) (उपलब्धव्यः) यदि न स्यात्तर्हि तत्त्वानि नियन्तारमन्तरेण कथं निरवलम्बानि नियतान्यवतिष्ठेरन् (अस्तीत्येव, उपलब्धस्य) अस्तीति विश्वासदृढध्यानेनोपलब्धस्य पुरुषस्य (तत्त्वभावः) सात्त्विकः शरी-

रेन्द्रियसमुदायः (प्रसीदति) प्रसन्नः शोकमोहादिरहितो भवति।

भा०—आस्तिकस्य परमात्मध्याननिष्ठस्यैव पुरुषस्य चेतः प्रसीदति—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसोह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठतइति भगवद्गीतासु। एवं सति सुखमेवोपलभ्यते न हीदृशं सुखं नास्तिकेन प्राप्तुं शक्यमतउभयोर्मध्येऽस्तीत्येव मन्यमानः श्रेयोभाग्भवति॥१३॥

भाषार्थः—(उभयोः) होने न होने दोनोंमें से (तत्त्वभावेन) आकाशादि पंचतत्त्व सम्बन्धी कार्य वस्तुओंकी विद्यमानता (च) और सत्त्वगुणरूप सूक्ष्म बुद्धिसे इस सबका नियन्ता परोक्ष कोई ईश्वर (अस्ति) है (इत्येव) इसी प्रकार (उपलब्धव्यः) प्राप्त होने योग्य है यदि न हो तो पंचतत्त्व किसी नियन्ताके विना निरालम्ब नियम पूर्वक कैसे ठहरें? (अस्तीत्येव) है ऐसे ही विश्वाससे (उपलब्धस्य) ध्यानसे प्राप्त होने वाले मनुष्यका (तत्त्वभावः) चेतन शरीर इन्द्रियों का समुदाय (प्रसीदति) शोक मोह रहित प्रसन्न होता है।

भा०—परमात्माके ध्यानमें निष्ठ आस्तिक पुरुषका ही चित्त प्रसन्न होता है। भगवद्गीतामें कहा है कि चित्तके शुद्ध प्रसन्न होनेसे सब दुःखोंकी हानि होजाती और जिसका चित्त प्रसन्न वा निर्मल निष्कलंक है उसकी बुद्धि शीघ्र स्थिर हो जाती है। ऐसा होनेसे नास्तिकको सुख कदापि नहीं मिल सकता इससे अस्ति नास्ति दोनोंमेंसे अस्तिको मानता हुआ ही कल्याणका भागी होता है॥ १३॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ १४ ॥

अ०—(ये) (अस्य) प्राणिनः (हृदि) अन्तःकरणे (श्रिताः) वासनाश्रयिताः(कामाः) प्रमदासङ्गादिजन्यविषयभोगाभिलाषाः (सर्वे) ते (यदा) (प्रमुच्यन्ते) परवैराग्याभ्यास-सेवनेन दूरीभवन्ति (अथ) तदानीम् (मर्त्यः) (अमृतः) मुक्तः (भवति) (अत्र) मुक्ति-दशायाम् (ब्रह्म) (समश्नुते) सम्यगाप्नोति ॥

भा०—यावद्विषयभोगेषु रागस्तद्विरुद्धेषु द्वेषश्च न निवर्त्तते तावन्मुक्तिर्भवितुमशक्या। यदाऽनादिकालसंचितविषयभोगोत्कण्ठा योगाभ्यासेन हृदयाद्दूरीभवति तदा विवेकी जन्म-मरणप्रवाहग्राहाद्विमुक्तो ब्रह्मीभवति ॥१४॥

भाषार्थः—(ये) जो (अस्य) इस प्राणीके (हृदि) अन्तःकरणमें (श्रिताः) वासनाओंसे बसाई हुई (कामाः) स्त्री प्रसंगादिसे होने वाली विषय भोगोंकी अभिलाषायें (सर्वे) सब हैं वे (यदा) जब (प्रमुच्यन्ते) पर वैराग्यके सेवनसे दूर हो जाती हैं (अथ) तब (मर्त्यः) मनुष्य (अमृतः) मुक्त (भवति) होता और (अत्र) इस मुक्ति-दशामें (ब्रह्म) ब्रह्मको (समश्नुते) सम्यक् प्राप्त हो जाता है अर्थात् [illegible] छूट जाता है ॥

Knots – The ignorance + its ... Instruction :– this is the Consummat

भा०—जब तक विषय भोगोंमें राग और उससे विरुद्धोंमें द्वेषकी निवृत्ति नहीं होती तब तक मुक्ति नहीं हो सकती। जब अनादि कालसे संचित विषय भोगकी उत्कण्ठा योगाभ्यास द्वारा हृदयसे दूर हो जाती है तब विवेकी पुरुष जन्म मरणके प्रवाह रूप ग्राहसे छूटा ब्रह्म भावको प्राप्त होता है ॥१४॥

यदा सर्वे प्राभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥ १५ ॥

अ०—तदेव द्रढयति-(यदा) (इह) अस्मिञ्जगति (हृदयस्य) अन्तःकरणस्य (सर्वे) (ग्रन्थयः) अहं बालो युवा वृद्धः काणः खञ्जः पुरुषः स्त्री क्लीबो वास्मि जातोऽहं मरिष्यामि हनिष्याभीत्यादिवासनारूपरश्मिभिर्दृढबन्धनानि सन्ति तानि (प्रभिद्यन्ते) ध्वस्तानि भवन्ति। शरीरस्येमे धर्मा अहं प्रत्यगात्मा शुद्धो नित्यश्चास्मि नाहं स्वरूपतो विकारापन्नइति ज्ञानं ग्रन्थिनिर्मोकः (अथ) तदा (मर्त्यः) (अमृतः) मुक्तः (भवति) (एतावत्) (अनुशासनम्) शास्त्रोपदेशः। एवं कृत्वैवेष्टमाप्नोत्यनिष्टं च जहाति ॥

भा०—यदा मनुष्यस्य हृदयबन्धनानि मुच्यन्ते तदा स मुक्तो ... ऽन्तः

The Sushumna of the Yogins leads etc:- i.e. when the Jiva departs with the ... it re-incarnates into this world ... births according to its Karma & desire.

करणस्यबन्धनानां निर्मोके परमः प्रयत्नो
विधेयो नातः परं कर्त्तव्यमुपदेशो वास्ति ॥१५॥

भावार्थ—फिर उसी बातको दृढ़ करते हैं—(यदा) जब (इह) इसी जन्ममें (हृदयस्य) अन्तःकरणकी (सर्वे) सब (ग्रन्थयः) गांठे [कि मैं बालक, जवान, वृद्ध, काणा, खंजा, स्त्री, पुरुष वा नपुंसक हूं मैं उत्पन्न हुआ मरूंगा वा किसी को मार डालूंगा इत्यादि वासना रूप रस्सियोंमें दृढ़ता पूर्वक लगी हुईं] (प्रभिद्यन्ते) छूट जाती हैं तो विचारता है कि ये बाल्यादि शरीरके धर्म हैं मैं अन्तरात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप शुद्ध नित्य ब्रह्म हूं मैं स्वरूपसे विकारी नहीं होता ऐसा ज्ञान गांठोंका छूटना है (अथ) तब (मर्त्यः) मनुष्य (अमृतः) मुक्त (भवति) हो जाता है (एतावत्) इतना ही (अनुशासनम्) शास्त्रकी शिक्षा वा उपदेश है ऐसा करनेसे ही मनुष्य अनिष्टको छोड़ इष्टको प्राप्त हो जाता है ॥

Departure ... 16 & 17

भा०—जब मनुष्यके हृदयके बन्धन छूट जाते हैं तब वह मुक्त होता इससे हृदयके बन्धन छूटनेके लिये मनुष्यको बड़ा प्रयत्न करना चाहिये इससे परे ज्ञानीको कुछ कर्त्तव्य वा उपदेश नहीं है ॥ १५ ॥

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां
मूर्द्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्व-
मेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥१६॥

अ०—प्रयाणकाले योगी किं कुर्यादि-
त्युच्यते—(हृदयस्य) हृदयसम्बन्धिन्योऽन्तः

करणस्थाः (शतम्) (च, एका, च) (नाड्यः) सन्ति (तासाम्) मध्ये (एका) सुषुम्णा नाड़ी हृदयात् (मूर्द्धानम्) (अभिनिःसृता) (तया) नाड्या (ऊर्ध्वम्) उत्क्रब्रह्माण्डछिद्रद्वारा (आयन्) निस्सरन् म्रियमाणो देही (अमृतत्वम्) अमरणधर्मतां सापेक्षां ब्रह्मलोकप्राप्तिरूपाम् (एति) प्राप्नोति । तामेकां विहाय (अन्याः) शतं नाड्यः (उत्क्रमेण) पृथक् क्रमेण (भवन्ति) अर्थादन्यनाड़ीद्वारा म्रियमाणः संसारप्रवाहमेवाऽऽप्नोति ॥

भा०—स्वस्य मरणावसरं योगी पूर्वत एव जानाति । शरीराद्बहिर्निस्सरणकालात्पूर्वमेव योगी स्वात्मानं वशीकृत्य सुषुम्णया सार्द्धं योजयेत् । तया नाड्या शरीरान्निस्सरन् ब्रह्मलोक प्राप्तिरूपां सापेक्षां मुक्तिमाप्नोति सर्वे नाड़ीभिर्निस्सरन्ति । अविद्याग्रस्ता नहि जानन्ति के वयं कदा कथं निस्सरामः । अकृतयोगाभ्यासः पुरुषः प्रयाणकाले यथेष्टं निस्सर्त्तुं नार्हति । अतः प्रयाणकालात्पूर्वमेव योगाभ्यासः कार्यः ॥१६॥

भा०—मरण समय योगी क्या करे सो कहते हैं:—(हृदयस्य) हृदयमें ठहरने वाली (शतम्) सौ (च) और (एका) एक (नाड्यः) नाड़ी हैं (तासाम्) उनके बीच (एका) सुषुम्णा नाड़ी हृदयसे चलके (मूर्द्धानम्) मस्तकमें (अभिनिस्सृता) जा निकली है (तया) उस नाड़ीके साथ (ऊर्ध्वम्) ग्यारह द्वारोंमें जो ब्रह्माण्डका छिद्र कहा है उसके द्वारा (आयन्) शरीरसे निकलता—मरता हुआ प्राणी (अमृतत्वम्) ब्रह्मलोककी प्राप्ति रूप सापेक्ष मुक्तिको (एति) प्राप्त होता है। उस नाड़ीको छोड़ (अन्याः) अन्य सौ नाड़ी (उत्क्रमणे) विपरीत फल देने वाली (भवन्ति) होती हैं अर्थात् अन्य नाड़ी द्वारा मरा हुआ प्राणी संसारके प्रवाह को प्राप्त होता है॥

भा०—अपने मरणका समय योगी पूर्वसे ही जानता है। शरीरसे निकलनेका समय आनेसे पूर्व ही योगी अपने आत्माको वशमें करके सुषुम्णा नाड़ीके साथ युक्त करे उस नाड़ी द्वारा शरीरसे निकलता हुआ जीवात्मा ब्रह्मलोककी प्राप्ति रूप सापेक्ष मुक्तिको प्राप्त हो जाता है। नाड़ियोंके द्वारा ही प्राण निकलते हैं। अविद्यामें फंसे होनेसे प्राणी नहीं जानते कि हम कौन हैं कब और कैसे निकल जाते हैं। जिसने योगाभ्यास नहीं किया वह मरण समय ब्रह्माण्ड द्वारा नहीं मर सकता इस लिये पहिलेसे ही योगाभ्यास करना चाहिये॥ १६॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः। तं स्वाच्छरीरात्प्र-

बृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण। तं विद्याच्छुक्र-ममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥ १७ ॥

अ०—यः (अङ्गुष्ठमात्रः) उक्तप्रकारेणाङ्गुष्ठमात्रस्थानीयः (जनानाम्) उत्पन्नानां प्राणिनां सम्बन्धिनि (हृदये) (सदा) (सन्निविष्टः) अवस्थितः (अन्तरात्मा) (पुरुषः) शरीरेन्द्रियसंघातस्य पालकोऽन्तरात्मास्ति (तम्) (मुञ्जादिव) (इषीकाम्) (धैर्येण) प्रमादं विहाय शनैः शनैः (प्रवृहेत्) पृथक् कुर्यात् (तम्) वास्तवस्वरूपेण (अमृतम्) अमरणधर्मकम्। स्वभावाद्रागद्वेषादिदोषरहितम् (शुक्रम्) शुद्धं पवित्रं निर्मलम् (विद्यात्) जानीयात्। द्विर्वचनं ग्रन्थसमाप्तिद्योतनार्थम् ॥

भा०—जीवात्मनः सर्वस्मादधिकप्रियं स्वस्यैव शरीरमनादिकालात्तस्मिन्सुखानि भुङ्क्ते चातस्तस्मिन्रागः। इदमेव बन्धनमयमेव ग्रन्थिः। अविद्याग्रस्तोऽयं शरीरान्निस्सर्तुंनेच्छति निस्सरणमत्रशं भविष्यतीति ज्ञात्वा महत्कष्टं मनुते। तमेवंभूतं हृदयान्तर्वर्त्तिन्यङ्गुष्ठमात्रस्थानेवस्थितंचिन्मात्र-

than; & so also will attain any one who knows thus the inner self (२०६)

मात्मानं योगाभ्यासादिसाधनैः शरीरबन्धना-न्मोचयेत्। येन पुनः शरीरधारणं न स्यात्। इय-मुपनिषदत्रैव समाप्तेति द्विर्वचनेन सूच्यते ॥१७॥

भाषार्थः—जो (अङ्गुष्ठमात्रः) उक्त प्रकारसे अङ्गुष्ठमात्र स्थानमें ठहरने वाला (जनानाम्) प्राणियोंके (हृदये) हृदयमें (सदा) सदा (सन्निविष्टः) अवस्थित (पुरुषः) शरीर इन्द्रियोंके समुदायका रक्षक (अन्तरात्मा) चेतनात्मा है (तम्) उसको (मुञ्जादिव) मूंजसे जैसे (इषीकाम्) सींक वा सिरकीको खींच लेते हैं वैसे (धैर्येण) प्रमाद रहित होके धीरे २ (प्रवृहेत्) पृथक् करे (तम्) उस चिदात्माको वास्तव स्वरूपसे (अमृतम्) अविनाशी स्वभावसे राग द्वेषादि दोष रहित (शुक्रम्) पवित्र निर्मल (विद्यात्) जाने यहां दो वार पाठ ग्रन्थ समाप्तिके लिये है ॥

भा०—जीवात्माको सबसे अधिक प्रिय अपना ही शरीर है अनादि कालसे उस शरीरमें सुख भोगे और भोगता है इससे उसमें राग है यही बन्धन और यही ग्रन्थि है। अविद्या में फंसा यह प्राणी शरीरसे पृथक् होना नहीं चाहता। और शरीर बेवश छोड़ना ही पड़ेगा ऐसा जानके बड़ा कष्ट मानता है उस ऐसे हृदयान्तर्वर्ती अङ्गुष्ठमात्र स्थानमें स्थित अन्तरात्मा को योगाभ्यासादि साधनों करके शरीरके बन्धनोंसे छुड़ावे जिससे फिर शरीर धारण न करना पड़े। यह उपनिषद् यहीं समाप्त हो गई सो दो वार पढ़नेसे सूचित होता है ॥१७॥

conclusion

Told by Death Nachiketas the

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा वि-

knowledge this and process of yoga whole realised Brahma

द्यामेतां योगविधिञ्च कृत्स्नम्। ब्रह्म-प्राप्तो

विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ॥ १८ ॥

अ०—(अथ) एतदुपनिषत्प्रतिपादितायाः ब्रह्मविद्यायाः फलमाह (मृत्युप्रोक्ताम्) मृत्युना यमाचार्येण प्रतिपादिताम् (एताम्, विद्याम्) (कृत्स्नम्) (योगविधिम्) (च) मृत्युप्रोक्तमेव (नचिकेताः) (लब्ध्वा) (ब्रह्म, प्राप्तः) (विरजः) विरक्तः (विमृत्युः) विगतो मृत्युरस्य सः (अभूत्) (अन्यः, अपि) (यः, एवंवित्) (अध्यात्ममेव) प्राप्तः स्यात्स विरजो विमृत्युश्च भवितुमर्हति ॥

भा०—नचिकेतसा गुरूपदेशाद् ब्रह्मविद्या योगाभ्यासविधानं च सकलं सफलं प्राप्तम् । अन्योपि यो ब्रह्मज्ञानमिच्छेत्तेन गुरुशुश्रूषयाऽन्यैश्च यथोक्तसाधनैर्ब्रह्मज्ञानं प्राप्य सर्वबाधाभ्यो विमुक्तेन भवितव्यम् ॥ १८ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब इस उपनिषद्में कही ब्रह्मविद्या का फल कहते हैं—(मृत्युप्रोक्ताम्) यमाचार्यने कही (एताम्) इस (विद्याम्) ब्रह्मविद्या (च) और (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण साङ्गोपाङ्ग (योगविधिम्) योगके विधानको (नचिकेताः) नचिकेता (लब्ध्वा) आचार्य से प्राप्त करके (ब्रह्म,प्राप्तः) ब्रह्मको प्राप्त हुआ (विरजः) विरक्त और (विमृत्युः) मृत्यु

रहित जीवन्मुक्त (अभूत्) होगया (अन्यः) अन्य (अपि) भी (यः, एवंवित् जो इस उक्त प्रकार गुरुकी सेवासे विद्वान् (अध्यात्ममेव) अध्यात्मविद्याको ही प्राप्त अर्थात् उक्त प्रकार इन्द्रियोंकी बाह्यशक्तिको रोकके भीतरी ध्यानमें ही प्रवृत्त हो वह भी विरक्त हुआ मुक्त होने योग्य है ॥

भा०—नचिकेता गुरुके उपदेशसे ब्रह्मविद्या और फल-सहित सम्पूर्ण योगाभ्यासके विधानको प्राप्त हुआ। अन्य भी जो ब्रह्मज्ञानकी इच्छा करे उसको चाहिये कि गुरुकी शुश्रूषासे और अन्य यथोक्त साधनोंसे ब्रह्मज्ञानको प्राप्त होके सब दुःखोंसे छूटे ॥ १८ ॥

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १९ ॥

अ०—अथान्ते प्रार्थनाशान्तिश्चाभिधीयते (नौ) आवाम् (सह) सहैव परमेश्वरः (अवतु) तर्पयतु (नौ) (सह) (भुनक्तु) पालयतु । आवाम् (वीर्यम्) ब्रह्मविद्यातो निष्पन्नं सामर्थ्यम् (सह) (करवावहै) साधयावहै (नौ) आवयोः शिष्याचार्ययोः (अधीतम्) अध्ययनमध्यापनं च (तेजस्वि) ब्रह्मतेजोऽन्वितमस्तु

शिष्याचार्य्यावावाम् (माविद्विषावहै) द्वेषं मा कुर्याव । ओ३म्, शान्तिः ३। त्रिविधशान्तिविधानेन तापत्रयं शान्तं भवतु ॥

भा०—सर्वस्मिन्कर्मणि परमेश्वर आदावन्ते च प्रार्थनीयः । उपद्रवा दुःखानि च न भवेयुरेतदर्थं शान्तिश्चाभिधेया । गुरुशिष्ययोर्लेशमात्रोऽपि भेदो न भवेत् । द्वयोरन्तःकरणं शुद्धं सेव्यसेवकप्रीतिवर्द्धकं प्रार्थनातत्परं मृदु भवेत्तदा विद्या सफला भवति। येनाध्यात्मिकादैविकाधिभौतिकदुःखानां शान्तिः स्यात् । अत्र द्विवचन निर्देशाच्छिष्याचार्याभ्यां स्त्रीपुंसाभ्यां वा प्रार्थना शान्तिश्च वक्तव्या ॥ १९ ॥

भाषार्थः—अब समाप्तिमें प्रार्थना और शान्ति कहते हैं (नौ) हम दोनों [गुरुशिष्यों] को (सह) साथ ही परमेश्वर (अवतु) तृष्णाको छुड़ाके तृप्त संतुष्ट करे (नौ) हम दोनों को (सह) साथ (भुनक्तु) रक्षा करे । हे परमेश्वर ! आपकी कृपासे हम दोनों (वीर्यम्) ब्रह्मविद्याके अभ्याससे हुए सुख दुःखादि द्वन्द्वसहनादि रूप सामर्थ्यको (सह) साथ (करवावहै) सिद्ध करें (नौ) हम दोनोंका (अधीतम्) पढ़ना पढ़ाना (तेजस्वि) ब्रह्मके तेजसे युक्त हो । हम दोनों (मा, विद्विषावहै) आपसमें कभी द्वेष न करें (ओ३म्) हे परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें जिससे हमारे आध्या-

त्मिक—मानस, आधिदैविक—वाचिक वा शाब्दिकादि तथा आधिभौतिक—शारीरिक उपद्रव वा दुःख शान्त होजावें ॥

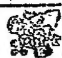
भा०—सब कर्मोंके आदि अन्तमें परमेश्वरकी प्रार्थना और उपद्रव वा दुःखोंके हटानेके लिये शान्ति कहनी चाहिये जब गुरु शिष्यके अन्तःकरणमें लेशमात्र भी भेद न हो किन्तु दोनोंका अन्तःकरण शुद्ध परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला प्रार्थना में रंगा कोमल हो तब विद्या सफल होती है जिससे आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक दुःखोंकी शान्ति हो सकती है। इस मंत्रमें कर्त्ता क्रिया के द्विवचन पढ़ने से गुरु शिष्य वा स्त्री पुरुषादि दो २ को मिलके ईश्वर की प्रार्थना और शान्ति कहनी चाहिये ॥ १९ ॥

इति ब्राह्मणसर्वस्वमासिकपत्रसम्पादकेन
वेदव्याख्यात्रा भीमसेनशर्म्मणा
निर्मितं कठोपनिषद्भाष्यं
* समाप्तम् *





* पुस्तकोंका सूचीपत्र *



१-ब्राह्मणसर्वस्व मासिकपत्र पिछले भाग, (तीसरे भागसे १४ वें भाग तक के सेट मोजूद हैं) प्रति भागका १॥) एकसाथ सब भाग लेने पर १२) अष्टादश स्मृति हिन्दी भाषा टीका सहित ३) भगवद्गीता भा० टी० २॥) याज्ञवल्क्यस्मृति सटीक १) ईशोपनिषद् सभाष्य ≶) केनोपनिषद् सभाष्य≶) कठोपनिषद् सभाष्य ॥।) प्रश्नोपनिषद् सभाष्य ॥) श्वेताश्वतरोपनिषद् सभाष्य ॥।) उपनिषदोंका उपदेश (प्रथम खण्ड) १।) द्वितीय खण्ड १) सतीधर्म संग्रह ।) पतिव्रता-माहात्म्य ≶)॥ भर्त्तृहरि नीतिशतक भा० टी० ≶) भर्त्तृहरि वैराग्य-शतक ≶) भर्त्तृहरि शृङ्गारशतक ≶) इष्टिसंग्रह ॥) मानवगृह्यसूत्र ॥) आपस्तम्बगृह्यसूत्र ।) यज्ञपरिभाषासूत्रसंग्रह ॥) पञ्चमहायज्ञविधि≶) भोजनविधि)॥ सन्ध्योपासनविधि)॥ कात्यायतर्पणप्रयोग)॥ नित्य-हवनविधि)॥ वेदसार शिवस्तोत्र)। सनातनहिन्दुधर्म व्याख्यान-दर्पण पूर्वार्द्ध २) दयानन्दमतविद्रावण ।) आर्य्यमतनिराकरणप्रश्नावली ।≶) आश्वमेधिकमन्त्रमीमांसा ≶) सत्यार्थप्रकाशसमीक्षा ≶) पञ्चकन्याचरित्र -) विधवाविवाहमीमांसा ।≶) मूर्त्तिपूजा मण्डन ।) ठनठन बाबू ≶) दयानन्दकी विद्वत्ता)॥ नमस्ते मीमांसा)॥ सनातनधर्मप्रश्नोत्तरावली)॥ रुक्माङ्गदसम्वाद सचित्र ≶) पुराणकर्त्तृमीमांसा)॥ जैनास्तिकत्वविचार)॥ गीतासंग्रह ।≶) विधवोद्वाहनिषेध)। सुमनपत्रिका ≶) रामगीता ≶) रामहृदय ≶) आदर्शरमणी ≶) अंगरेजी हिन्दी व्यापारिक कोष १॥) हनुमानचालीसा)॥ रामचालीसा)। उपदेशरत्नमाला)। धर्मरक्षा और भारतविनय)। शिवाजी और मराठाजाति ।≶) गुरुगोविन्दसिंह ।≶) अभिमन्युवध ≶) यूनान की कहानियाँ -) आर्तकृषिविज्ञान ।) भारतीय आख्यान ।) हिन्दुओं का सामाजिक आदर्श -) अपूर्वनौका ≶) भारतवर्षका इतिहास १) अथर्ववेदालोचन ॥) दिशाभूल उपन्यास ।≶) रामप्रसादवदत्त ।≶) शरणवत्सलहम्मीर ≶)



मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा ।

